श्री दि० जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र) का मुखपत्र

आत्मधर्म

सम्पादक : डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल
कार्यालय : टोडरमल स्मारक भवन, ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४

वर्ष ३५ : अंक ११ [४१९] मई, १९८०

आत्मधर्म [४१९]

[हिन्दी, गुजराती, मराठी, तामिल तथा कन्नड़ — इन पाँच भाषाओं में प्रकाशित
जैन समाज का सर्वाधिक बिक्रीवाला आध्यात्मिक मासिक]

संपादक :
डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल

प्रबंध संपादक :
अखिल बंसल

कार्यालय :
श्री टोडरमल स्मारक भवन
ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४

प्रकाशक :
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (भावनगर-गुजरात)

शुल्क :
आजीवन : १०१ रुपये
वार्षिक : ६ रुपये
एक प्रति : ५० पैसे

मुद्रक :
सोहनलाल जैन
जयपुर प्रिण्टर्स, जयपुर

कहाँ / क्या

१ जे दिन तुम विवेक बिन खाये
२ आत्मार्थी छात्रों को अपूर्व अवसर
३ संपादकीय : जिनवरस्य नयचक्रम्
४ णत्थि मम धम्मआदी
[समयसार प्रवचन]
५ सम्यक् रत्नत्रय
[नियमसार प्रवचन]
६ द्रव्यसंग्रह प्रवचन
७ ज्ञान-गोष्ठी
८ समाचार दर्शन
९ प्रबंध संपादक की कलम से

छपते-छपते

पूज्य गुरुदेव अब स्वस्थ हैं। ४ मई को आप राजकोट पधार चुके हैं। कमजोरी के कारण वहाँ एक ही समय प्रवचन चलता है। आप वहाँ लगभग १५ दिन विराजेंगे। — संपादक

आ त्म ध र्म

शाश्वत सुख का, आत्म शान्ति का, प्रगट करे जो मर्म।
समयसार का सार, सभी को प्रिय, यह आतम धर्म॥

वर्ष : ३५ [४१९] अंक : ११

जे दिन तुम विवेक बिन खाये॥ जे दिन०॥
मोह वारुणी पी अनादि तैं,
पर-पद में चिर सोये।
सुखकरंड चितपिंड आपपद,
गुन अनंत नहीं जोये॥ जे दिन०॥
होय बहिर्मुख ठानि राग-रुष,
कर्म बीज बहु बोये।
तसु फल सुख-दुःख सामग्री लखि,
चित में हरषे रोये॥ जे दिन०॥
धवल ध्यान शुचि सलिल पूरतें,
आस्रव मल नहीं धोये।
परद्रव्यनि की चाह न रोकी,
विविध परिग्रह ढोये॥ जे दिन०॥
अब निज में निज जान नियत तहाँ,
निज परिणाम समोये।
यह शिवमारग समरस सागर,
'भागचंद' हित तोये॥ ते दिन०॥

आत्मार्थी छात्रों को अपूर्व अवसर

आत्मार्थी छात्र डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल के सान्निध्य में रहकर चारों अनुयोगों के माध्यम से जैनधर्म का सैद्धांतिक अध्ययन कर सकें तथा साथ ही संस्कृत, न्याय, व्याकरण आदि विषयों का आवश्यक ज्ञान प्राप्त कर सकें—इस उद्देश्य के फलस्वरूप श्री टोडरमल स्मारक भवन में २४ जुलाई १९७७ से टोडरमल दिगंबर जैन सिद्धांत महाविद्यालय चल रहा है। अभी इसमें ३२ आत्मार्थी छात्र अध्ययन कर रहे हैं।

इस वर्ष सिर्फ बारह छात्रों को नवीन प्रवेश देना है।

उक्त छात्रों को राजस्थान विश्वविद्यालय की जैनदर्शन-शास्त्री एवं जैनदर्शन-आचार्य परीक्षाऐं दिलायी जाती हैं, जो क्रमश: बी०ए० और एम०ए० के बराबर सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त हैं।

शास्त्री का कोर्स ३ वर्ष का है। उसके बाद २ वर्ष का कोर्स आचार्य परीक्षा का है। शास्त्री परीक्षा में प्रवेश के लिये एक वर्ष का उपाध्याय कोर्स करना होगा जो कि हायर सेकेण्ड्री के समकक्ष है।

उपाध्याय परीक्षा में प्रवेश हेतु, किसी भी वैकल्पिक विषय से हाईस्कूल अथवा हायर सेकेण्ड्री (कक्षा दसवीं या ग्यारहवीं) की बोर्ड परीक्षा में कम से कम ५० प्रतिशत अंकों से उत्तीर्ण होना आवश्यक है। आवेदन करते समय वैकल्पिक विषयों सहित अपनी शैक्षणिक योग्यता अवश्य लिखें एवं संबंधित अंकसूची भी भेजें।

उक्त परीक्षाओं के अतिरिक्त वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड, जयपुर द्वारा संचालित सभी परीक्षाओं में तथा शास्त्री कक्षा के छात्रों को बंगीय संस्कृत शिक्षा परिषद् द्वारा संचालित न्यायप्रथमा, न्यायमध्यमा और न्यायतीर्थ परीक्षाऐं भी दिलायी जाती हैं।

छात्रों में आध्यात्मिक रुचि उत्पन्न करने हेतु वर्ष में एक या दो बार पूज्य स्वामीजी के सान्निध्य के लाभ हेतु सोनगढ़ ले जाया जाता है।

स्मारक भवन में ही निरंतर आध्यात्मिक वातावरण प्रदान करने हेतु आदरणीय विद्वद्वर्य पंडित लालचंदभाई मोदी बम्बई, पंडित खीमचंदभाई सोनगढ़, सिद्धांताचार्य पंडित फूलचंदजी वाराणसी, पंडित बाबूभाई मेहता फतेपुर, पंडित नेमीचंदजी पाटनी आगरा, पंडित नरेंद्रकुमारजी भिसीकर सोलापुर आदि का सान्निध्य प्राप्त होता है। डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल एवं पंडित रतनचंदजी भारिल्ल तो यहाँ हैं ही।

इसप्रकार पूरा-पूरा आध्यात्मिक वातावरण रहता है।

आवास एवं भोजन की सुविधा नि:शुल्क रहती है।

आगामी सत्र जुलाई, १९८० से प्रारंभ होगा। प्रवेशार्थी शीघ्र ही प्रार्थना-पत्र प्रेषित करें। यदि उन्हें प्रवेश योग्य समझा गया तो उन्हें मई मास में होनेवाले ग्रीष्मकालीन प्रशिक्षण शिविर में साक्षात्कार हेतु बुलाया जायेगा।

— मंत्री, श्री टोडरमल दि० जैन सिद्धांत महाविद्यालय

नय का सामान्य स्वरूप

[गतांक से आगे]

स्यादपद से मुद्रित परमागमरूप श्रुतज्ञान के भेद नय हैं। यद्यपि श्रुतज्ञान एक प्रमाण है तथापि उसके भेद नय हैं। इसी कारण श्रुतज्ञान के विकल्प को नय कहा गया है। ज्ञाता के अभिप्राय को भी नय कहा जाता है। प्रमाण सर्वग्राही होता है और नय अंशग्राही तथा नय प्रमाण द्वारा प्रकाशित पदार्थ के एक अंश को अपना विषय बनाता है।

'आलापपद्धति' में नय का स्वरूप इस प्रकार स्पष्ट किया गया है:—

''प्रमाणेन वस्तुसंग्रहीतार्थैकांशो नयः श्रुत विकल्पो वा, ज्ञातुरभिप्रायो वा नयः। नाना स्वभावेभ्यो व्यावृत्य एकस्मिन् स्वभावे वस्तु नयति प्रापयतीति वा नयः।

प्रमाण के द्वारा गृहीत वस्तु के एक अंश को ग्रहण करने का नाम नय है अथवा श्रुतज्ञान का विकल्प नय है अथवा ज्ञाता का अभिप्राय नय है। अथवा नाना स्वभावों से वस्तु को पृथक् करके जो एकस्वभाव में वस्तु को स्थापित करता है, वह नय है।''

अनंत धर्मात्मक होने से वस्तु बड़ी जटिल है। उसको जाना जा सकता है, पर कहना कठिन है। अतः उसके एक-एक धर्म का क्रमपूर्वक निरूपण किया जाता है। कौन धर्म पहले और कौन धर्म बाद में कहा जाये—इसका कोई नियम नहीं है।

अतः ज्ञानी वक्ता अपने अभिप्रायानुसार जब एक धर्म का कथन करता है, तब कथन में वह धर्म मुख्य और अन्य धर्म गौण रहते हैं।

इस अपेक्षा से ज्ञाता के अभिप्राय को नय कहा जाता है।

'तिलोयपण्णत्ति' में कहा है:—

''णाणं होदि पमाणं णओ वि णादुस्स हिदियभावत्थो।[१]

सम्यग्ज्ञान को प्रमाण और ज्ञाता के अभिप्राय को नय कहा जाता है।''

कहीं-कहीं वक्ता के अभिप्राय को नय कहा गया है।[२]

मुख्य धर्म को विवक्षित धर्म और गौण धर्म को अविवक्षित धर्म कहते हैं। पर ध्यान रहे नयों के कथन में अविवक्षित धर्मों की गौणता ही अपेक्षित है, निषेध नहीं। निषेध अपेक्षित होने पर वह नय नहीं रह पावेगा, नयाभास हो जावेगा।

'प्रमेयकमल मार्तण्ड' में नय की परिभाषा में 'अनिराकृत प्रतिपक्ष' विशेषण डालकर 'गौण' शब्द का भाव अत्यंत सफलतापूर्वक स्पष्ट कर दिया गया है। आशय यह है कि जिन धर्मों को प्रतिपक्ष मानकर गौण किया गया है उनका निराकरण नहीं किया गया है, अपितु उनके संबंध में मौन रखा गया है, उनका विधि-निषेध कुछ भी नहीं किया गया है, उनके बारे में चुप्पी ही गौणता का रूप है।

मार्तण्डकार की परिभाषा इसप्रकार है:—

''अनिराकृतप्रतिपक्षो वस्त्वंशग्राही ज्ञातुरभिप्रायो नयः।[३]

प्रतिपक्षी धर्मों का निराकरण न करते हुए वस्तु के अंश को ग्रहण करनेवाला ज्ञाता का अभिप्राय नय है।''

यह मुख्यता और गौणता वस्तु में विद्यमान धर्मों की अपेक्षा नहीं, अपितु वक्ता की इच्छानुसार होती है। विवक्षा-अविवक्षा वाणी के भेद हैं, वस्तु के नहीं। वस्तु में तो सभी धर्म प्रतिसमय अपनी पूर्ण हैसियत से विद्यमान रहते हैं, उनमें मुख्य-गौण का कोई प्रश्न ही नहीं है—क्योंकि वस्तु में तो अनंत गुणों को ही नहीं, परस्पर विरोधी प्रतीत होनेवाले अनंत धर्म-युगलों को भी अपने में धारण करने की शक्ति है। वे तो वस्तु में अनादि काल से हैं और अनंत काल तक रहेंगे भी। उनको एक साथ कहने की सामर्थ्य वाणी में न होने के कारण वाणी में विवक्षा-अविवक्षा और मुख्य-गौण का भेद पाया जाता है।

इस कारण ही वक्ता के अभिप्राय को नय कहा गया है।

---

१. तिलोयपण्णत्ति, अध्याय १, गाथा ८३

२. स्याद्वादमंजरी, श्लोक २८ की टीका

३. प्रमेयकमल मार्तण्ड, पृष्ठ ६७६

नय ज्ञानात्मक भी होते हैं और वचनात्मक भी। जहाँ ज्ञानात्मक नय अपेक्षित हों वहाँ ज्ञाता के अभिप्राय को, और जहाँ वचनात्मक नय अपेक्षित हों वहाँ वक्ता के अभिप्राय को नय कहा जाता है।

तथा नय सम्यक्श्रुतज्ञान के भेद होने से उनका वक्ता भी ज्ञानी होना आवश्यक है। अतः ज्ञानी वक्ता के अभिप्राय को नय कहा जाता है। इसलिये चाहे ज्ञाता के अभिप्राय को नय कहो, चाहे वक्ता के अभिप्राय को नय कहो—एक ही बात है।

यहाँ एक प्रश्न संभव है कि जब नय श्रुतज्ञान के भेद हैं तो फिर वे वचनात्मक कैसे हो सकते हैं?

श्रुत को भी द्रव्यश्रुत और भावश्रुत के भेद से दो प्रकार का माना गया है।

आचार्य समंतभद्र के श्रुतज्ञान को स्याद्वाद शब्द से भी अभिहित किया है।[१]

मति आदि पाँच ज्ञानों में नय श्रुतज्ञान में और प्रत्यक्ष, स्मृति आदि प्रमाणों में आगमप्रमाण में आते हैं। आगम को द्रव्यश्रुत भी कहते हैं।

द्रव्यश्रुत और भावश्रुत के समान नयों के भी द्रव्यनय और भावनय—ऐसे दो भेद किये गये हैं।

पंचाध्यायीकार लिखते हैं:—

''द्रव्यनयो भावनयः स्यादिति भेदाद् द्विधा च सोऽपि यथा।
पौद्गलिकः किल शब्दो द्रव्यं भावश्च चिदिति जीव गुणः॥[२]

यह नय द्रव्यनय और भावनय के भेद से दो प्रकार का है। पौद्गलिक शब्द द्रव्यनय हैं और जीव का चैतन्यगुण भावनय हैं।''

अतः नयों के वचनात्मक होने में कोई विरोध नहीं है।

न्यायशास्त्र के प्रतिष्ठापक आचार्य अकलंकदेव नय को प्रमाण से प्रकाशित पदार्थ को प्रकाशित करनेवाला बताते हैं:—

''प्रमाणप्रकाशितार्थ विशेषप्ररूपको नयः।[३]

प्रमाण द्वारा प्रकाशित पदार्थ का विशेष निरूपण करनेवाला नय है।''

---

१. आप्तमीमांसा, श्लोक १०५

२. पंचाध्यायी पूर्वार्द्ध, श्लोक ५०५

३. तत्त्वार्थराजवार्तिक, अध्याय १, सूत्र ३३

नयचक्रकार माइल्लधवल भी लिखते हैं:—

''णाणासहावभरियं वत्थु गहिऊण तं पमाणेण।
एयंतणासणट्ठं पच्छा णयजुंजणं कुणह॥१७२॥[१]

अनेक स्वभावों से परिपूर्ण वस्तु को प्रमाण के द्वारा ग्रहण करके तत्पश्चात् एकान्तवाद का नाश करने के लिए नयों की योजना करनी चाहिए।''

धवलाकार तो नयों की उत्पत्ति ही प्रमाण से मानते हैं। अपनी बात सिद्ध करते हुए वे लिखते हैं:—

''पमाणादो णयाणमुप्पत्ती, अणवगयट्ठेगुणप्पहाणभावाहिप्पायाणुप्पत्तीदो।[२]

प्रमाण से नयों की उत्पत्ति होती है, क्योंकि वस्तु के अज्ञात होने पर, उसमें गौणता और मुख्यता का अभिप्राय नहीं बनता।''

'द्रव्यस्वभावप्रकाशक नयचक्र' में नय की परिभाषा इसप्रकार दी गई है:—

''जं णाणीण वियप्पं सुवासयं वत्थुअंस संग्रहणं।
तं इह णयं पउत्तं णाणी पुण तेण णाणेण॥१७३॥

श्रुतज्ञान का आश्रय लिखे हुए ज्ञानी का जो विकल्प वस्तु के अंश को ग्रहण करता है, उसे नय कहते हैं। और उस ज्ञान से जो युक्त होता है, वह ज्ञानी है।''

अन्य बातें सामान्य होने पर भी इसमें यह विशेषता है कि एक ओर तो ज्ञानी के विकल्प को नय कहा गया है और दूसरी ओर नय-ज्ञान से युक्त आत्मा को ज्ञानी माना गया है।

इसका मूलभाव यही प्रतीत होता है कि वे इस बात पर बल देना चाहते हैं कि सम्यक्नय ही नय हैं और वह नय ज्ञानी के ही होते हैं, अज्ञानी के नहीं। अज्ञानी के नय नय नहीं, नयाभास हैं।

यद्यपि वस्तु अनंत धर्मात्मक है तथापि नय उसके किसी एक धर्म को ही अपना विषय बनाता है। जिस धर्म को वह विषय बनाता है, वह मुख्य और अन्य धर्म गौण रहते हैं।

'कार्तिकेयानुप्रेक्षा' में स्पष्ट लिखा है:—

''णाणाधम्मजुदं पि य एवं धम्मं पि वुच्चदे अत्थं।
तस्सेय विवक्खादो णत्थि विवक्खा हु सेसाणं॥[३]

---

१. द्रव्यस्वभावप्रकाशक नयचक्र, गाथा १७२

२. धवला पु० ९, खंड ४, भाग १, सूत्र ४७, पृष्ठ २४० [जैनेन्द्र सिद्धांतकोश, भाग २, पृष्ठ ५२५]

३. कार्तिकेयानुप्रेक्षा, गाथा २६४

यद्यपि पदार्थ नाना धर्मों से युक्त होता है तथापि नय उसके एक धर्म को ही कहता है, क्योंकि उस समय उस धर्म की ही विवक्षा रहती है, शेष धर्मों की नहीं।''

वस्तु में अनंत धर्म ही नहीं, अपितु परस्पर विरुद्ध प्रतीत होनेवाले अनंत धर्म युगल भी हैं। परस्पर विरुद्ध प्रतीत होनेवाले दो धर्मों में से भी एक धर्म को ही नय विषय करता है—इस तथ्य को ध्यान में रखकर 'पंचाध्यायीकार' नय की चर्चा इसप्रकार करते हैं:—

''इत्युक्तलक्षणेऽस्मिन् विरुद्धधर्मद्वयात्मके तत्त्वे।
तत्राप्यन्यतरस्य स्यादिह धर्मस्य वाचकश्च नयः॥[१]

जिसका लक्षण कहा गया है ऐसे दो विरुद्ध धर्मवाले तत्त्व में किसी एक धर्म का वाचक नय होता है।''

इन सब बातों को धवलाकार ने और भी अधिक स्पष्ट करने का यत्न किया है, जो कि इसप्रकार है:—

''को नयो नाम ?
ज्ञातुरभिप्रायोनयः।
अभिप्राय इत्यस्य कोऽर्थः ?
प्रमाणपरिग्रहीतार्थैकदेशवस्त्वध्यवसायः अभिप्रायः। युक्तितः प्रमाणत् अर्थपरिग्रहः द्रव्यपर्याययारन्यतरस्य अर्थ इति परिग्रहो वा नयः। प्रमाणेंन परिच्छिन्नस्य वस्तुनः द्रव्ये पर्याये वा वस्त्वध्यवसायो नय इति यावत्।[२]

प्रश्नः-नय किसे कहते हैं ?

उत्तरः-ज्ञाता के अभिप्राय को नय कहते हैं।

प्रश्नः-अभिप्राय इसका क्या अर्थ है ?

उत्तरः-प्रमाण से गृहीत वस्तु के एकदेश में वस्तु का निश्चय ही अभिप्राय है। युक्ति अर्थात् प्रमाण से अर्थ ग्रहण करने अथवा द्रव्य और पर्यायों में से किसी एक को ग्रहण करने का नाम नय है। अथवा प्रमाण से जानी हुई वस्तु के द्रव्य अथवा पर्याय में अर्थात् सामान्य या विशेष में वस्तु के निश्चय को नय कहते हैं, ऐसा अभिप्राय है।''

---

१. पंचाध्यायी पूर्वार्द्ध, श्लोक ५०४

२. जैनेन्द्र सिद्धांतकोश, भाग २, पृष्ठ ५१३

नयों का कथन सापेक्ष ही होता है, निरपेक्ष नहीं; क्योंकि वे वस्तु के अंशनिरूपक हैं। नयों के कथन के साथ यदि अपेक्षा न लगाई जावे तो जो बात वस्तु के अंश के बारे में कही जा रही है, उसे संपूर्ण वस्तु के बारे में समझ लिया जा सकता है, जो कि सत्य नहीं होगा। जैसे हम कहें 'आत्मा अनित्य है'। यह कथन पर्याय की अपेक्षा तो सत्य है, पर यदि इसे द्रव्य-पर्यायात्मक आत्मवस्तु के बारे में समझ लिया जाये तो सत्य नहीं होगा, क्योंकि द्रव्य-पर्यायात्मक आत्मवस्तु तो नित्यानित्यात्मक है।

इसीलिए कहा है :—

''निरपेक्षा नया मिथ्या सापेक्षा वस्तुतेऽर्थकृत्॥[१]

निरपेक्ष नय मिथ्या होते हैं और सापेक्ष नय सम्यक् व सार्थक होते हैं।''

और भी—

''ते सावेक्खा सुणया णिरवेक्खा ते वि दुण्णया होंति।[२]

वे नय सापेक्ष हों तो सुनय होते हैं और निरपेक्ष हों तो दुर्नय होते हैं।''

और भी अनेक शास्त्रों में नयों की विभिन्न परिभाषायें प्राप्त होती हैं। उन सब को यहाँ देने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि उनमें वे ही बातें हैं, जो कि समग्ररूप से उक्त कथनों में आ जाती हैं।

उक्त समस्त कथनों पर गंभीरतापूर्वक विचार करने पर निम्नानुसार तथ्य प्रतिफलित होते हैं:—

(१) नय स्याद्वादरूप सम्यक्श्रुतज्ञान के अंश हैं।

(२) नयों की प्रवृत्ति प्रमाण द्वारा जाने हुए पदार्थ के एक अंश में होती है।

(३) अनंत धर्मात्मक पदार्थ के कोई एक धर्म को अथवा परस्पर विरुद्ध प्रतीत होनेवाले धर्म-युगलों में से कोई एक धर्म को नय अपना विषय बनाता है।

(४) वस्तु के किस धर्म को विषय बनाया जाये, यह ज्ञानी वक्ता के अभिप्राय पर निर्भर करता है।

(५) नय ज्ञानी के ही होते हैं।

(६) ज्ञानी वक्ता जिसको विषय बनाता है, उसे विवक्षित कहते हैं।

---

१. आचार्य समंतभद्र, आप्तमीमांसा, कारिका १०८

२. कार्तिकेयानुप्रेक्षा, गाथा २६६

(७) नयों के कथन में विवक्षित धर्म मुख्य होता है, और अन्य धर्म गौण रहते हैं।

(८) नय गौण धर्मों का निराकरण नहीं करता, मात्र उनके संबंध में मौन रहता है।

(९) नय ज्ञानात्मक भी होते हैं और वचनात्मक भी।

(१०) सापेक्ष नय ही सम्यक्नय होते हैं, निरपेक्ष नहीं।

जिन नयों के प्रयोग में उक्त तथ्य न पाये जावें, वस्तुतः वे नय नहीं हैं; नयाभास हैं।

[क्रमशः]

सोनगढ़ ने चेतन में पैसे का अद्वितीय सदुपयोग किया है

उक्त शब्द पंडित कैलाशचंदजी शास्त्री बनारसवालों ने आदर्शनगर दिगम्बर जैन मंदिर जयपुर में आयोजित विद्वत सम्मेलन के अध्यक्षीय भाषण में कहे। आपने सोनगढ़ द्वारा हो रही धर्म प्रभावना की चर्चा करते हुए कहा—''समाज में पैसे एवं उदारता की कमी नहीं है। आज जड़ पैसा जड़ में ही लग रहा है, चेतन में उसका सदुपयोग नहीं हो रहा है। सोनगढ़ ने चेतन में भी पैसे का अद्वितीय सदुपयोग किया है। इनके द्वारा नवीन जिनमंदिरों का निर्माण वहीं किया जाता है, जहाँ मंदिर नहीं होते हैं तथा उनकी आवश्यकता होती है। सोनगढ़ द्वारा आयोजित पंचकल्याणकों में पूजा और विधि-विधान के अतिरिक्तशास्त्र प्रवचन की मुख्यता रहती है। साहित्य प्रकाशन एवं प्रचार में उनका जोड़ नहीं है। हमें भी इनका अनुकरण करते हुए बाहुबली के सहस्राब्दी महोत्सव में प्राप्त आय का सदुपयोग श्रवणबेलगोला तथा मूड़बद्री में गुरुकुल खोलने में करना चाहिये।

आवश्यक सूचनाऐं:—

(१) सत्य की खोज भाग २ लगभग पूर्ण हो चुकी है तथा रक्षाबंधन तक प्रकाशित होने की संभावना है। जिन बंधुओं को उक्त कृति की जितनी आवश्यकता हो, तत्काल आर्डर भेजें। प्राप्त आर्डरों की क्रम से पुस्तकें भेजी जावेंगी।

(२) गत अंक में 'कहानकथा : महानकथा' नाम चित्रकथा का प्रकाशन प्रारंभ किया है। जिन बंधुओं को पूज्य कानजीस्वामी के जीवन से संबंधित घटनाओं आदि की जानकारी हो वे तुरंत हमें भेजें ताकि उक्त तथ्यों को भी इस चित्रकथा में जोड़ा जा सके। बाद में यह चित्रकथा पुस्तकरूप में भी प्रकाशित करने की योजना है।

(३) आजकल बिजली की कटौती के कारण जयपुर के लगभग सभी प्रिंटिंग प्रेस अस्त-व्यस्त हो रहे हैं। इस समय जयपुर प्रिंटर्स में विशेष परिस्थिति के कारण भी आत्मधर्म की छपाई में व्यवधान उत्पन्न हो रहा है। इस कारण यह अंक विलंब से प्रकाशित हो रहा है। अगले अंक के प्रकाशन में भी देरी हो सकती है। इसके लिये कृपालु पाठक क्षमा करें तथा इस संबंध में अनावश्यक पत्र-व्यवहार न करें।

णत्थि मम धम्मआदी

परमपूज्य आचार्य कुन्दकुन्द के सर्वोत्तम ग्रंथराज 'समयसार' की सैंतालीसवीं गाथा पर हुए पूज्य कानजीस्वामी के प्रवचनों का सार यहाँ दिया जा रहा है। मूल गाथा इसप्रकार है:—

णत्थि मम धम्मआदी बुज्झदि उवओग एव अहमेक्को।
तं धम्मणिम्ममत्तं समयस्य वियाणया बेंति॥३७॥

'यह धर्म आदि द्रव्य मेरे नहीं हैं और मैं केवल एक उपयोग ही हूँ'—ऐसे ज्ञान को सिद्धांत के अथवा स्व-पर समय के जाननेवाले धर्मादि द्रव्य के प्रति निर्ममत्व कहते हैं।

छत्तीसवीं गाथा में आत्मा का मोहकर्म के निमित्त से होनेवाले भावों से अर्थात् भावकभाव से भेद-विज्ञान किया गया है; अब सैंतीसवीं गाथा में आत्मा का ज्ञेय-भावों से भी भेद-विज्ञान करते हैं। यद्यपि ज्ञानी को भी धर्मास्तिकाय आदि संबंधी विचार आते हैं; परंतु वे मेरे हैं—ऐसा विचार ज्ञानी को नहीं आता। ज्ञानी तो ऐसा विचार करते हैं कि 'ये धर्म आदि द्रव्य मेरे नहीं हैं, मैं तो मात्र एक उपयोग ही हूँ।' ज्ञानी के उक्त विचार को स्व-पर समय के जाननेवाले 'धर्मनिर्ममत्व' कहते हैं।

इस गाथा का अर्थान्तर भी मिलता है:—'धर्म आदि द्रव्य मेरे नहीं हैं, मैं एक हूँ' ऐसा उपयोग ही जाने; उस उपयोग को समय के जाननेवाले ज्ञानी धर्म आदि के प्रति निर्ममत्व कहते हैं। यहाँ पर उपयोग को उपयोग जानता है—ऐसा भेद भी नहीं है। उपयोग ही जानता है कि मैं एक हूँ; इसप्रकार यहाँ भेद का निषेध करके उपयोग का अभेदत्व स्थापित किया है।

आत्मा की चैतन्यशक्ति कैसी है ? इसप्रकार प्रश्न करने पर आचार्यदेव उत्तर देते हैं कि जो निजरस से ही प्रगट हुई है; अर्थात् परनिमित्त से—परलक्ष से प्रगट नहीं हुई है। अपने स्वभाव पर लक्ष्य करने से ऐसी चैतन्यशक्ति प्रगट हुई है कि जिसका विस्तार अनिवार है तथा समस्त विश्व के पदार्थों को ग्रसित करने का जिसका स्वभाव है।

ज्ञायक आत्मा का स्वभाव ही ऐसा है कि जो आत्मा उस ज्ञायक स्वभाव को जानता है,

उसकी पर्याय में भी पूर्ण शक्ति व्यक्त होती है—जिसमें समस्त लोकालोक के पदार्थ दर्पण की तरह प्रकाशित होने लगते हैं।

ज्ञान का यह स्वभाव है कि वह कभी थकता नहीं है। जिसप्रकार कम जानने में ज्ञान नहीं थकता; उसीप्रकार सर्व पदार्थों को जानने में भी ज्ञान नहीं थकता। ज्ञान कभी इंकार नहीं करता कि मैं अब नहीं जान सकता; अतः ज्ञान जब अपनी शक्ति के पूर्णतः व्यक्त कर देता है, तब उसमें सर्व पदार्थों को प्रकाशित करने की सामर्थ्य भी प्रगट हो जाती है।

हमें ऐसी शंका होती है कि इतने छोटे से शरीर में इतना बड़ा ज्ञान कैसे हो सकता है? परंतु भाई! छोटे-बड़े शरीर से ज्ञान का कोई संबंध नहीं है; हम जगत में भी देखते हैं कि विशालकाय शरीर में बुद्धि अल्प हो और छोटे-से शरीर में बुद्धि बहुत हो। वैज्ञानिकों ने जड़-पुद्गल की शक्ति का ज्ञान कराया तो हमें उसका तो विश्वास होता है। परंतु आश्चर्य की बात है कि जो स्वयं स्वभाव से ही सर्वज्ञस्वभावी है, उसे अपनी शक्ति का विश्वास नहीं होता। अरे! आत्मा की चैतन्यशक्ति तो ऐसी है कि जो सम्यक् प्रकार से अपने ज्ञायकस्वभावी आत्मा में अंतर्मुहूर्त भी स्थिर हो जावे तो केवलज्ञान प्रगट हो जावे।

आत्मा की चैतन्यशक्ति का पार नहीं है। समस्त पदार्थों को ग्रसित करने का जिसका स्वभाव है; समस्त लोकालोक के धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल तथा अन्य जीव—सभी पदार्थ चैतन्यशक्ति में मानो अत्यन्त अंतर्मग्न हों, ज्ञान में तदाकार होकर डूबे हों, अंतर्प्रविष्ट हों, समाये हों।

यद्यपि पर-पदार्थ आत्मा में इसप्रकार प्रतिभासित होते हैं कि मानों वे ज्ञायक आत्मा में अत्यंत अंतर्मग्न हो गये हों, अंतर्प्रविष्ट हो गये हों; तथापि पर-पदार्थ आत्मा में प्रविष्ट नहीं होते; आत्मा तो मात्र उनका ज्ञाता है। इसके अतिरिक्त आत्मा का उनके साथ किसी प्रकार का भी कोई संबंध नहीं है। यह आत्मा का धर्म आदि द्रव्यों के साथ निर्ममत्व है। यहाँ पर यह बात स्पष्ट होती है कि जाननेमात्र से ममत्व नहीं होता है और आत्मा का स्वभाव तो धर्म आदि द्रव्यों को जाननामात्र है। अतः मैं पर-पदार्थों को तो मात्र जानता ही हूँ, उनसे मेरा किसी प्रकार का कोई संबंध नहीं है, मैं तो एक उपयोगमात्र हूँ; यही वास्तव में धर्म आदि द्रव्यों से निर्ममत्व है।

प्रवचनसार की २००वीं गाथा में भी यही बात स्पष्ट की गई है—

"प्रथम तो मैं स्वभाव से ज्ञायक ही हूँ; केवल ज्ञायक होने से मेरा विश्व (समस्त

पदार्थों) के साथ भी सहज ज्ञेय-ज्ञायक-लक्षण संबंध ही है, किंतु अन्य स्व-स्वामि-लक्षणादि संबंध नहीं है; इसलिये मेरा किसी के प्रति ममत्व नहीं है, सर्वत्र निर्ममत्व ही है। अब, एक ज्ञायकभाव का समस्त ज्ञेयों को जानने का स्वभाव होने से, क्रमशः प्रवर्तमान, अनंत, भूत-वर्तमान-भावी विचित्र पर्याय-समूहवाले, अगाध-स्वभाव और गंभीर ऐसे समस्त द्रव्यमात्र को—मानों वे द्रव्य ज्ञायक में उत्कीर्ण हो गये हों, चित्रित हो गये हों, भीतर घुस गये हों, कीलित हो गये हों, डूब गये हों, समा गये हों, प्रतिबिम्बित हुए हों—इसप्रकार एक क्षण में जो (शुद्धात्मा) प्रत्यक्ष करता है, ज्ञेय-ज्ञायक-लक्षण संबंध की अनिवार्यता के कारण ज्ञेय-ज्ञायक को भिन्न करना अशक्य होने से विश्वरूपता को प्राप्त होने पर भी जो सहज अनंत-शक्तिवाले ज्ञायकस्वभाव के द्वारा एकरूपता को नहीं छोड़ता, जो अनादि संसार से इसी स्थिति में रहा है और जो मोह के द्वारा दूसरे रूप में जाना-माना जाता है—उस शुद्धात्मा को मैं इस मोह को उखाड़ फेंककर, अतिनिष्कम्प रहता हुआ यथास्थित ही प्राप्त करता हूँ।''

यद्यपि प्रत्यक्ष से केवलज्ञान में यह सामर्थ्य होती है कि वह समस्त लोकालोक के पदार्थों को जाने तथापि यहाँ सम्यग्दृष्टि के सम्यक् मति-श्रुतज्ञान की बात करते हैं कि वह भी परोक्षरूप से समस्त पर-पदार्थों का ज्ञान करता है। सम्यग्दृष्टि जब ज्ञायक-स्वभावी आत्मा का अनुभव करता है तो ज्ञायाक के साथ-साथ मानो वह समस्त लोकालोक के अनंत पदार्थों को, उनके अनंत गुणों को, तथा उनकी अनंतानंत पर्यायों को भी प्रत्यक्ष करता है।

वास्तव में तो आत्मा पर-पदार्थों को जानता ही नहीं है, वह तो पर-पदार्थों संबंधी अपने ज्ञान को ही जानता है। पर-पदार्थों को छूकर कोई भी ज्ञान नहीं होता है। केवलज्ञान तो पर-पदार्थों को उनसे अलिप्त होकर जानता ही है; परंतु मति-श्रुतज्ञान आदि भी पर-पदार्थों को अलिप्त रहकर ही जानते हैं। वास्तव में ज्ञान कभी ज्ञेयाकार होता ही नहीं है, ज्ञान सदैव ज्ञानाकार ही होता है।

आचार्यदेव कहते हैं कि चिन्मात्रशक्ति का समस्त पदार्थों को ग्रसित करने का स्वभाव है; यहाँ ग्रसित करने का मात्र इतना तात्पर्य है कि चिन्मात्रशक्ति का समस्त पदार्थों को जानने का स्वभाव है।

आचार्यदेव आगे कहते हैं कि आत्मा में प्रकाशमान धर्म-अधर्म-आकाश-काल-पुद्गल और अन्य जीव—ये समस्त परद्रव्य मेरे संबंधी नहीं हैं; क्योंकि मैं तो टंकोत्कीर्ण एक

ज्ञायकस्वभावत्व से परमार्थत: अंतरंग तत्त्व हूँ और वे परद्रव्य मेरे स्वभाव से भिन्न स्वभाववाले होने से परमार्थत: बाह्यतत्त्वरूपता को छोड़ने के लिये असमर्थ हैं।

जगत में छह द्रव्य हैं जो स्वयं स्वभाव से परिपूर्ण हैं, किसी को किसी की अपेक्षा नहीं है। वे निरंतर अपने स्वभाव से ही परिणमन करते रहते हैं। छह द्रव्यों के स्वभावों का विचार करन पर भी जैनदर्शन की वस्तुव्यवस्था की अनंत महिमा तथा वैज्ञानिकता ख्याल में आती है।

सर्व ब्रह्माण्ड में एक धर्मास्तिकाय और एक अधर्मास्तिकाय अरूपी द्रव्य हैं, जिनका स्वभाव क्रमश: जीव तथा पुद्गल को गति करने में और गतिपूर्वक स्थिति करने में निमित्त होने का है। ये दोनों द्रव्य उदासीन निमित्त हैं; तथा गति तथा स्थिति में निमित्त होकर ही जगत का मकान उपकार करते हैं।

आकाशास्तिकाय नाम का सर्व लोकालोक में व्यापक एक अरूपी पदार्थ है—जो धर्म, अधर्म, काल, पुद्गल और जीव—इस पाँचों द्रव्यों को अवगाहन देने में उदासीन निमित्त है। आकाश द्रव्य के एक-एक प्रदेश की इतनी सामर्थ्य है कि अनंत जीव, अनंत पुद्गल को एक साथ अवगाहन देवे।

लोकाकाश के असंख्यात प्रदेशों में प्रत्येक प्रदेश पर एक-एक कालाणु खचित है। वे कालाणु समस्त द्रव्यों के परिणमन में उदासीन निमित्त हैं। यदि काल द्रव्य न हो तो द्रव्यों के परिणमन में कौन निमित्त होगा—इसप्रकार कालद्रव्य की सिद्धि होती है।

लोक में जो दृश्य-पदार्थ भासित होते हैं, वे सब पुद्गल-स्कंध हैं, उन स्कंधों में एक-एक परमाणु पृथक्-पृथक् स्वतंत्र द्रव्य है। एक-एक परमाणु की ऐसी सामर्थ्य है कि एक समय में चौदह राजू गमन करे।

इसीप्रकार शरीर, मन, वाणी, कर्म, बाह्यसंयोग आदि सब पुद्गल की ही माया है।

मुझ चैतन्य जीवतत्त्व के अलावा लोक में अन्य भी अनंत जीव हैं। स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब आदि तो अन्य जीव हैं ही; देव, गुरु भी अन्य जीव हैं; अरहंत, सिद्ध भगवान भी अन्य जीव हैं। सभी जीव अपने-अपने चैतन्यस्वभाव में स्थित हैं।

समस्त द्रव्य सदा ही अपने-अपने स्वभाव में रहते हैं। कोई भी द्रव्य कभी भी अपने स्वभाव से च्युत नहीं होता। अत: समस्त परद्रव्यों में एक भी मेरा संबंधी नहीं है।

धर्मी विचार करता है कि धर्म, अधर्म, आकाश, व कालद्रव्य से तो मेरा किसी प्रकार

का कोई संबंध है नहीं; शरीर, मन, वाणी, कर्म तथा संयोग से भी मेरा कोई संबंध नहीं है। स्त्री,पुत्र, कुटुंब आदि से भी मेरा कोई संबंध नहीं है। यहाँ तक कि अरहंत, सिद्ध भगवान, देव, शास्त्र, गुरु से भी मेरा कोई संबंध नहीं है।

जगत में जितने भी परद्रव्य हैं, कोई भी मेरा भला-बुरा करने में समर्थ नहीं है। और मुझे भी किसी भी परद्रव्य की कोई आवश्यकता नहीं है।

प्रश्न :- जगत में कोई भी पदार्थ मेरा भला-बुरा नहीं कर सकता, तो क्या देव-शास्त्र-गुरु भी मेरा भला करने में असमर्थ हैं ? क्या ऐसा मानने में एकांत दृष्टि नहीं होती ?

उत्तर :- नहीं, ऐसा मानने में एकांत दृष्टि का अवकाश भी नहीं है। यदि देव, शास्त्र, गुरु अपने स्वभाव को छोड़कर मुझ रूप परिणमित हो जावें तो वे अवश्य मेरा भला कर सकते हैं। परंतु जब कोई द्रव्य अपनी स्वभाव-सीमा का उल्लंघन नहीं करता तो वे कैसे अपने स्वभाव को छोड़ सकते हैं।

वास्तव में सच्चे देव-शास्त्र-गुरु भी यही उपदेश देते हैं कि जब तक तेरा लक्ष्य देव-शास्त्र-गुरु पर रहेगा तब तक तू अपना कल्याण नहीं कर सकता, तेरा कल्याण तो खुद तुझसे होगा। अपने स्वभाव की ओर देख तो तेरा कल्याण अवश्य होगा। अत: देव-शास्त्र-गुरु का यथार्थ निर्णय भी अपने स्वरूप की ओर लक्ष्य करने से होता है। जब आत्मा अपने स्वरूप का भान करता है, तब ही देव-शास्त्र-गुरु का सच्चा निमित्त होता है। देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा का भी साक्षात् फल यही है। इससे ज्ञान भी सम्यग्ज्ञानरूप होता है।

मैं टंकोत्कीर्ण एक ज्ञायकस्वभावपने से परमार्थत: अंतरंग तत्त्व हूँ, अनंत-अनंत ज्ञानादि गुणों का अखंड पिंड हूँ। परवस्तुएँ किंचित् भी मेरे स्वभाव में प्रविष्ट नहीं होतीं— इसीलिये मैं टंकोत्कीर्ण हूँ, परवस्तुएँ मेरे स्वभाव में लेशमात्र भी विघ्न-बाधाएँ नहीं कर सकतीं। चाहे जितनी भी अनुकूलताएँ-प्रतिकूलताएँ आवें, वे मुझे स्पर्श करने में भी असमर्थ हैं, उनसे मुझे किंचित् भी लाभ-हानि नहीं है। ऐसा निर्णय ज्ञानी को सहज ही हो जाता है।

अखंड ज्ञायकस्वभाव के स्वीकार में ही अनंत पुरुषार्थ है, धर्म है।

अनादिकाल से इस जीव ने पर-पदार्थों में इष्ट-अनिष्ट की मिथ्या कल्पना करके संसार भ्रमण किया; परंतु सुख-स्वभावी भगवान आत्मा को स्वीकार नहीं किया।

भाई ! सुख-स्वरूप आत्मा के स्वीकार में ही अनंत पुरुषार्थ है— धर्म है। यही जगत में करनेयोग्य कार्य है।

आचार्यदेव टीका में आगे कहते हैं कि ''मैं नित्य उपयुक्त हूँ, अर्थात् मैं नित्य उपयोगस्वभावी हूँ, ज्ञान-दर्शन के व्यापार वाला अखंड तत्त्व हूँ। ज्ञान-दर्शन का व्यापार ही मेरा व्यापार है, संकल्प-विकल्प का व्यापार मेरा व्यापार नहीं।

मैं एक हूँ; संकल्प-विकल्प अनेकरूप हैं, वह मेरा स्वभाव नहीं। इसीप्रकार गुण अनंत हैं, पर्यायें अनंत हैं; परंतु मैं तो एक हूँ। अनंत पर्यायों के खंड से मैं खंडित नहीं होता; अनंत गुणों के खंड से मैं खंडित नहीं होता; मैं एक अखंडस्वभावी ही हूँ।

मैं आत्मा सदा ही अनाकुलस्वरूप हूँ, मुझे पर की लेशमात्र भी चिंता नहीं करनी। समस्त पदार्थ अपने-अपने रूप परिणमत हैं, मुझे किसी भी पदार्थ के परिणमन की आकुलता नहीं करनी। ज्ञानी ऐसा विचार करता है कि मुझे जगत का किंचित् भी कर्तृत्व नहीं है; जिस द्रव्य का, जिस क्षेत्र में, जिस काल में जो होना है; उस द्रव्य का, उस क्षेत्र में, उस काल में वही होना है। उसे बदलने में जब इन्द्र अथवा जिनेन्द्र भी समर्थ नहीं हैं, फिर मुझमें क्या सामर्थ्य है। मैं तो अनाकुलतास्वरूप ही हूँ।''

इसप्रकार ज्ञानी नित्य उपयोगस्वभावी, एक और अनाकुल आत्मा का अनुभव करता हुआ, अपने को भगवान आत्मा ही जानता है। यद्यपि अभी केवलज्ञान प्रगट नहीं हुआ, तथापि अपने को भगवान आत्मा जानता है। पर्याय में अल्पज्ञ होने पर भी अपने को स्वभाव से सर्वज्ञ मानता है, पर्याय में रागी होने पर भी स्वभाव से वीतरागी मानता है, पर्याय में अनेकरूप होने पर भी अपने को एकरूप अनुभव करता है।

धर्मी जीव को अपनी अनंत महिमा आती है। उसकी दृष्टि स्वभाव की ओर होती है। अत: जिन्हें पर्याय में वीतरागता, सर्वज्ञता प्रगट हुई है—उनके समान अपने को भी स्वभाव से भगवान ही मानता है।

''शरीर-मन-वाणी से मैं उत्कृष्ट पदार्थ हूँ। शरीर-मन-वाणी को न अपना ज्ञान है और न अन्य पदार्थों का; परंतु मुझे तो अपना भी ज्ञान है तथा अन्य पदार्थों का भी ज्ञान है। सारे जगत को जानने का मेरा स्वभाव है। अत: मैं सर्वोत्कृष्ट पदार्थ अंतस्तत्त्व हूँ।''—ऐसा मानने में पर की जो अनंत महिमा थी वह छूटकर अपनी अनंत महिमा आती है।

धर्मात्मा जानते हैं कि ''जगत के पदार्थों का और मेरा सहज ज्ञेय-ज्ञायक संबंध है और ज्ञेय-ज्ञायक संबंध के कारण मेरा तथा अन्य समस्त पदार्थों का परस्पर मिलन होने पर भी प्रगट धर्म आदि द्रव्यों से स्वभाव-भेद होने के कारण उनके प्रति मैं निर्मम हूँ।''

ज्ञानी को अपनी पूर्व अवस्था का विचार आने पर खेद वर्तता है कि जब इस वस्तुतत्त्व को नहीं समझा था तो पर में अपना स्व-स्वामी संबंध माना था, पर में अपना कर्तृत्व माना था और व्यर्थ आकुलता करता था, राग-द्वेष के परिणाम करता था। परंतु जब ऐसा जाना कि पर के साथ मेरा किसी प्रकार का स्व-स्वामी संबंध नहीं है, तो व्यर्थ की आकुलता का नाश हो गया और आत्मा अपने स्वरूप में, सहज निराकुल शांति-सदन में निवास करने लगा और सहज सुख का वेदन करने लगा।

अंत में आचार्य कहते हैं कि सदा ही अपने एकत्व में प्राप्त होने से प्रत्येक पदार्थ ज्यों का त्यों ही स्थित रहता है। इस वाक्य में आचार्य ध्रुवत्व को बतलाते हैं। आचार्य गंभीर रहस्य का उद्घाटन करते हुए कहते हैं कि यदि आत्मा का पर के संबंधवाली बंध अवस्था तथा पर के संबंध का अभाववाली मोक्ष अवस्था से लक्ष हटाकर विचार किया जाये तो वह तो जैसा का वैसा ही है, वह सदा एकत्व को ही प्राप्त है। अवस्थाओं की विभिन्नता को लक्ष्य से हटाकर वस्तु का अनुभव किया जाये तो आत्मा अखंड एक ध्रुव ही है। आत्मा में द्वित्व कभी हुआ ही नहीं है। पर-निमित्त की अपेक्षा से रहित वस्तु को विचार करें तो वस्तु तो जैसी की वैसी सदा ही अपने एकत्व को प्राप्त है। अवस्थाओं की अपेक्षा विचार किया जाये तो जगत् के पदार्थ अनेकरूप दिखाई देते हैं। यदि द्रव्य-स्वभाव से देखा जाये तो समस्त पदार्थ एकरूप ही हैं।

किसी भी वस्तु को छोटा-बड़ा कहने में 'पर' की अपेक्षा आती है। किंतु जब पर की अपेक्षा ही न हो तो उसे किसप्रकार छोटा-बड़ा कहा जा सकता है? जब वस्तु को अकेला कहना हो तो समस्त पर की अपेक्षा निकाल देना चाहिये। आत्मा का कर्म के साथ संबंध है, उसकी अपेक्षा जब न ली जावे तो वस्तु जैसी है, वैसी ही है, पूर्णतः निरपेक्ष है।

चैतन्य आत्मतत्त्व अनंत-अनंत ज्ञानादि गुणों का रसकंद प्रभु विद्यमान है, उसकी अवस्था में पर-निमित्त की अपेक्षा से देखा जाये तो राग-द्वेषरूप संसार है और राग-द्वेष-मोह का अभाव होवे तो पर-निमित्त मिटने से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप मोक्षमार्ग तथा मोक्ष है। किंतु उस निमित्त की सद्भाव-अभावरूप अपेक्षा लक्ष्य में न ली जाये तो आत्मद्रव्य, द्रव्य-गुणपर्याय से जैसा है, वैसा ही है।

आत्मा की राग-द्वेषरूप अवस्था में कर्म निमित्त हैं और परमाणु की कर्मरूप अवस्था में आत्मा की राग-द्वेषरूप अवस्था निमित्त है—ऐसी परस्पर अपेक्षा निकाल दी जावे तो दोनों पदार्थ जैसे हैं, वैसे ही निरपेक्ष स्थित हैं।

इस गाथा में आचार्यदेव ने अनंत स्वतंत्रता की घोषणा की है। आचार्य की घोषणा है कि—''तू प्रभु है! स्वतंत्र है! तुझे अपने माहात्म्य की खबर नहीं है, इससे तूने पर को माहात्म्य दिया है; किंतु वह पर का माहात्म्य छोड़ दे और भगवान आत्मा का माहात्म्य कर। द्रव्यदृष्टि से सब स्वतंत्र पदार्थ हैं, उस दृष्टि से पराश्रय दूर होता है और स्वाश्रय होता है–वही धर्म है। द्रव्यदृष्टि से प्रत्येक रजकण पृथक् हैं, प्रत्येक आत्मा पृथक् है। तू अपने आत्मा का लक्ष्य कर, तुझे सुख होगा।''

इसप्रकार ज्ञेय–भावों से तथा भावक–भावों से भेद–विज्ञान हुआ और पृथक्त्व का भान हुआ।

अब, आचार्य अमृतचंद्रदेव छत्तीसवीं तथा सैंतीसवीं गाथाओं की महिमारूप कलश–काव्य कहते हैं:—

इति सति सह सर्वैरन्यभावैर्विवेके
स्वयमयमुपयोगो बिभ्रदात्मानमेकम्।
प्रकटितपरमार्थैर्दर्शनज्ञानवृत्तैः
कृतपरिणतिरात्माराम एव प्रवृत्तः ॥३१॥

इसप्रकार सर्व अन्य भावों से भेद–विज्ञान होने पर यह उपयोग स्वयं एकमात्र अपने आत्मा को ही धारण करता हुआ, परमार्थ को प्रकट करनेवाली सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्ररूप वृत्तियों के द्वारा जिनकी परिणति हुई है, वह अपने आत्मारूपी बाग में ही प्रवृत्त होती है, अन्यत्र नहीं।

इस कलश में छत्तीसवीं तथा सैंतीसवीं गाथा का उपसंहार किया गया है, अतः सर्व अन्य भावों से भेद–विज्ञान का तात्पर्य सर्व भावक–भाव तथा ज्ञेय–भावों से भेदविज्ञान से है। भावकरूप जो द्रव्यकर्म का उदय तथा उसके निमित्त से होनेवाला भाव भावक–भाव कहलाता है तथा समस्त धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल तथा अन्य जीव ज्ञेयभाव हैं। आत्मा जब इन समस्त भावक–भावों तथा ज्ञेय–भावों से भेदविज्ञान करता है, तब उपयोग सहज ही स्वयं एकमात्र अपने आत्मा को विषय करता है, धारण करता है।

यहाँ आचार्यदेव उपयोग को ही आत्मा कहते हैं। उपयोग आत्मा को धारण करता है, इसका मतलब उपयोग अलग है और आत्मा अलग है—ऐसा नहीं है। यहाँ तो उपयोग ही स्वयं

आत्मा है। और आत्मा ही स्वयं उपयोग है। उपयोग और आत्मा में भेद नहीं है, उपयोग और आत्मा एक ही अभेद हैं। यहाँ तो पूर्ण (अखंड) आत्मा ही लिया है।

कलश टीकाकार ने सर्व अन्य भावों का अर्थ द्रव्यकर्म-नोकर्म-भावकर्म किया है।

आत्मा कैसे शुद्ध होता है? तो उसका उत्तर है कि समस्त अन्यभावों से अर्थात् समस्त द्रव्यकर्म-नोकर्म-भावकर्म से शुद्ध चैतन्यतत्त्व का भिन्नपना होने पर शुद्ध होता है।

परमार्थ को प्रकट करने में जो समर्थ हैं, ऐसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप जिनकी परिणति हुई है; वे अपने आत्मारूपी बाग में ही प्रवृत्त होते हैं। यहाँ पर परमार्थ के दो अर्थ ग्राह्य हैं। एक अर्थ तो यह है कि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप परिणति में परमार्थरूप अंतरंग तत्त्व प्रगट होता है। दूसरा अर्थ यह है कि परमार्थ अर्थात् मोक्ष अवस्था को प्रकट करने में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप मोक्षमार्ग ही समर्थ है, और मोक्षमार्गरूप परिणति से युक्त जीव अपने आत्मारूपी बाग में ही प्रवृत्त होते हैं, अन्यत्र नहीं।

अंतरंग परमार्थ ध्रुव तत्त्व ही मैं हूँ—ऐसी श्रद्धा सम्यग्दर्शन है; ऐसा ही ज्ञान सम्यग्ज्ञान है; और अंतरंग परमार्थ ध्रुवतत्त्व में ही रमणता सम्यक्चारित्र है।

आत्मा को दर्शन-ज्ञान-चारित्रस्वभावी कहने में तथा ज्ञानानंदस्वभावी कहने में कोई अंतर नहीं है। क्योंकि ज्ञान के स्थानीय दर्शन और ज्ञान हैं, ज्ञान में अनुभव की प्रधानता है; और आनंद के स्थानीय चारित्र है, चारित्र में आनंद की प्रधानता है।

आत्मारूपी बाग ही वास्तव में क्रीड़ा करनेयोग्य है। उसी को जानना चाहिये, उसी की रुचि करना चाहिये और उसी में क्रीड़ा करना चाहिये। सर्व परद्रव्यों से, शरीरादि से तथा कर्म के निमित्त से हुए भावों से जब आत्मा का भेद जाना, तब उपयोग को क्रीड़ा करने के लिये कोई स्थान ही न रहा तो उपयोग अपने आप स्वरूप में क्रीड़ा करने लगा। यह क्रीड़ा परम मंगलमय है।

लोग सुबह घूमने-फिरने जाते हैं, चार-चार मील तक पैदल घूमते-फिरते हैं; और मानते हैं कि घूमने-फिरने से शरीर में स्फूर्ति आती है, ताकत आती है और बाद में काम करने में अच्छा मन लगता है।—इसप्रकार यह जीव संकल्प-विकल्प के बाग में घूमता-फिरता रहता है और अपने को पराश्रित तथा अपूर्ण मानता है। उसे पर से भिन्न चैतन्य-स्वभावी परम मांगलिक तत्त्व कैसे जमे? चैतन्यतत्त्व को आज तक जाना नहीं, पहचाना नहीं, तो उसमें केलि कैसे करे? यदि चैतन्यतत्त्व को जाने, रुचि करे, श्रद्धा करे, और उसे ही परम हितकारी माने तो

उसमें क्रीड़ा किये बिना कैसे रहे ? भाई ! चैतन्यतत्त्व अनंत शक्तियों से भरा प्रभु है, वही सच्चा उद्यान है; उसमें क्रीड़ा कर तो तेरा कल्याण अवश्य होगा, तुझे अनंत सुख की प्राप्ति होगी।

जीव पंचेन्द्रिय के विषयों में भी आनंद मानते हैं। स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण इंद्रिय की विषय-भोग सामग्री को ही इकट्ठा करने में लगे हैं। घर में बाग-बगीचे हों, ठंडे-ठंडे पानी का छिड़काव हो, गुलाब के फूलों की महक चारों तरफ फैल रही हो, फव्वारों का दृश्य मनोरम हो भाई साहब इष्ट मित्रों सहित बाग में क्रीड़ा कर रहे हों, समझ रहे हों कि हम आनंद की दीवाली मना रहे हैं। परंतु भाई ! यह आनंद की दीवाली नहीं, बल्कि आत्मिक-आनंद की होली है। विषय-भोगों में भी कहीं आनंद होता है, यह तो कल्पना में सुख मान रखा है, वास्तविक आनंद का स्वाद तो अपने अनंत सुख भंडार भगवान आत्मा में क्रीड़ा करने से उपलब्ध होगा।

यहाँ तो आचार्य कहते हैं कि अनुभव-पर्याय में तो जरा भी विकल्प का प्रवेश नहीं है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र—आत्मा की पर्यायें भी भेदरूप से आत्मा में प्रवृत्त नहीं होतीं। सम्यग्दर्शन तो आत्मा की श्रद्धा करता है, सम्यग्ज्ञान आत्मा का ज्ञान करता है, और सम्यक्चारित्र आत्मा में आचरण करता है; ऐसा विकल्प भी अनुभव में नहीं होता; अनुभव तो अखंडपने आत्मा का आश्रय करता है—जिससे अखंड-आनंद की प्राप्ति होती है। यही सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों की एकता है।

इसप्रकार आचार्यदेव ने इस कलश में राग-द्वेष-मोहादि से दृष्टि हटाकर परम सुख धाम निजशुद्धात्मा में ही प्रवृत्ति करने की बात की है।

१०१) रुपये में आत्मधर्म के स्थायी ग्राहक बनकर अपनी आगामी पीढ़ियों के लिये भी आत्मधर्म सुरक्षित कीजिये।

सम्यक रत्नत्रय

विवरीयाभिणिवेसविवज्जियसद्दहणमेव सम्मत्तं।
संसयविमोहविब्भमविवज्जियं होदि सण्णाणं॥५१॥
चलमलिणमगाढत्तविवज्जियसद्दहणमेव सम्मत्तं।
अधिगमभावो णाणं हेयोवादेयतच्चाणं॥५२॥
सम्मत्तस्स णिमित्तं जिणसुत्तं तस्स जाणया पुरिसा।
अंतरहेऊ भणिदा दंसणमोहस्स खयपहुदी॥५३॥
सम्मत्तं सण्णाणं विज्जदि मोक्खस्स होदि सुण चरणं।
ववहारणिच्छएण दु तम्हा चरणं पवक्खामि॥५४॥
ववहारणयचरित्ते ववहारणयस्य होदि तवचरणं।
णिच्छयणयचारित्ते तवचरणं होदि णिच्छयदो॥५५॥

विपरीताभिनिवेशरहित श्रद्धान ही सम्यक्त्व है। संशय, विमोह और विभ्रमरहित (ज्ञान)—वह सम्यग्ज्ञान है।

चलता, मलिनता और अगाढ़तारहित श्रद्धान ही सम्यक्त्व है। हेय और उपादेय तत्त्वों को जाननेरूप भाव—वह (सम्यक्) ज्ञान है।

सम्यक्त्व का निमित्त जिनसूत्र है; जिनसूत्र के जाननेवाले पुरुषों को (सम्यक्त्व के) अंतरंग हेतु कहे हैं, क्योंकि उनको दर्शनमोह के क्षयादिक हैं।

सुन! मोक्ष के लिये सम्यक्त्व होता है, सम्यग्ज्ञान होता है, चारित्र (भी) होता है। इसलिये मैं व्यवहार और निश्चय से चारित्र कहूँगा।

व्यवहारनय के चारित्र में व्यवहारनय का तपश्चरण होता है; निश्चयनय के चारित्र में निश्चय से तपश्चरण होता है।

निश्चयसम्यग्दर्शन प्रकट करनेवाले जीव को जिनसूत्र बहिरंग निमित्त है।

जो जीव निश्चयसम्यग्दर्शन प्रकट करता है उसको कौन निमित्त होता है—इसकी पहचान इस गाथा में कराई है। सम्यग्दर्शन में निमित्त भगवान की वाणी अथवा वाणी में से

रचित जिनसूत्र हैं। वीतराग की वाणी ऐसा कहती है कि कारणपरमात्मा धर्म के लिये उपादेय है तथा पुण्य-पाप दोनों हेय हैं और त्रिकालीस्वभाव के आश्रय से धर्म होता है। वीतराग की वाणी का तात्पर्य ऐसा है कि ज्ञायकस्वभाव के लक्ष्य से श्रद्धा-ज्ञान-वीतरागता प्रकट होती है, किंतु किसी निमित्त से अथवा पुण्य से धर्मदशा प्रकट नहीं होती। इसप्रकार यथार्थ स्वरूपप्ररूपक जिनसूत्र हैं और निश्चयसम्यग्दर्शन प्रकट करनेवाले को यह बाह्य निमित्त हैं।

निश्चयसम्यग्दर्शन प्रकट करनेवाले जीव को ज्ञानी धर्मात्मा अंतरंग निमित्त हैं।

अब सम्यग्दर्शन प्रकट होने में अंतरंग निमित्त बताते हैं। जिनसूत्र के जाननेवाले पुरुष अंतरंग निमित्त हैं। जिनसूत्र के मात्र शब्द निमित्त नहीं होते, अपितु जिनसूत्र के रहस्य को जानकर तदनुसार अंतरंग परिणमन को प्राप्त ज्ञानी पुरुष जिन्होंने स्वयं में सम्यग्दर्शन उपलब्ध कर लिया है, वे ही दूसरे के लिये सम्यग्दर्शन में अंतरंग निमित्त हैं। ज्ञानी पुरुष और उनकी वाणी दोनों ही यद्यपि पर ही हैं—अंतरंग नहीं; तथापि वाणी और ज्ञानी पुरुष इन दोनों निमित्तों में भेद-प्रदर्शन के लिये वाणी को बाह्य और ज्ञानी को अंतरंग निमित्त कहा है। यद्यपि ज्ञानी पुरुष पर हैं, फिर भी वे क्या कहना चाहते हैं उस आत्मिक अभिप्राय को उनके समक्ष उपस्थित धर्म प्राप्त करनेवाला जीव जब पकड़ लेता है और अभिप्राय की पकड़ में सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति हो जाती है, तब उस ज्ञानी पुरुष को जिससे उपदेश मिला है, अंतरंग हेतु अथवा निमित्त कहा जाता है।

सम्यग्दर्शन में ज्ञानी धर्मात्माओं को ही अंतरंग निमित्त क्यों कहा ?

उपर्युक्त कथन से यह निश्चित हुआ कि अज्ञानी जीव जिसप्रकार धर्म प्राप्ति में निमित्त नहीं होते, उसीप्रकार अकेले शास्त्र भी निमित्त नहीं होते। सम्यग्दर्शन प्राप्त करनेवाले को एकबार चैतन्यज्ञानी के निमित्त का योग अवश्य होना चाहिये। यहाँ पराधीनता की बात नहीं है, किंतु निमित्त का ज्ञान कराने का प्रयोजन है।

सम्यग्ज्ञान होने पर स्व-परप्रकाशक स्वभाव प्रगट होता है, तब स्व को जानने के साथ पर-प्रकाशकज्ञान में ऐसे निमित्त होते हैं—यह भी जान लेता है। केशर खरीदते समय वारदाना डिब्बी के रूप में ही होगा, कहीं टाट के बोरे के रूप में नहीं होगा। डिब्बी से केशर आ जाती हो—ऐसा तो है नहीं, परंतु केशर लेने जाते समय वारदाना डिब्बी का ही होगा। उसीप्रकार धर्मदशा प्रकट होते समय धर्मी चैतन्य आत्मा निमित्त होगा, तथापि वह धर्म प्राप्त करायेगा

—ऐसा यहाँ बताना नहीं है, यहाँ तो निमित्त की पहचान कराई है।

ज्ञानी पुरुषों को अंतरंग हेतु कहने का कारण यह है कि उन्होंने दर्शनमोह का क्षय, उपशम अथवा क्षयोपशम कर लिया है। आत्मा का अवलंबन लेकर सम्यग्दर्शन की पात्रता हुई हो, ऐसे जीव को वीतरागी वाणी तथा उसका रहस्य समझकर सम्यग्दर्शन प्राप्त किये हुए ज्ञानी पुरुष अंतरंग निमित्त होते हैं। ज्ञानी पुरुषों के कथन का आशय सामने उपस्थित धर्म प्राप्त करनेवाला जीव पकड़ता है, इसलिए ज्ञानी को अंतरंग निमित्त कहा है।

५४वीं गाथा में निश्चयसम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की बात कहते हैं। प्रथम दो गाथाओं में देव-शास्त्र-गुरु आदि की विकल्पवाली श्रद्धा वगैरह व्यवहारसम्यक्त्व की बात की थी, तीसरी में निमित्त का ज्ञान कराया था; अब इस गाथा में निश्चयसम्यक्त्व की बात करते हैं। ज्ञानस्वभावी आत्मा की श्रद्धा करना वह निश्चयसम्यग्दर्शन है, आत्मा का ज्ञान वह निश्चयसम्यग्ज्ञान है और आत्मा में स्थिरता वह निश्चयचारित्र है। इसप्रकार का सम्यग्दर्शन जिसको प्रगट हुआ हो उसको व्यवहारसम्यग्दर्शन होता है और जिसको ऐसी पात्रता होती है, उसको ज्ञानी का निमित्त मिले बिना रहता नहीं।

अब व्यवहार और निश्चयचारित्र की बात करते हैं।

मुनि के छठे गुणस्थान में पाँच महाव्रतादि के विकल्पवाला भाव वर्तता है, सम्यग्दर्शन है तथा चारित्रदशा भी प्रकटी है; किंतु सातवीं भूमिका की निर्विकल्पदशा हुई नहीं है और शुभराग है, उसको व्यवहारनय का तपश्चरण कहा है; तथा शुद्धस्वभाव की दृष्टि से निर्विकल्पदशा में जो ठहरना है—वह निश्चयतपश्चरण है।

पंचपरमेष्ठी के प्रति भक्ति तथा विपरीततारहित पदार्थों की श्रद्धा वह व्यवहारसम्यग्दर्शन है।

यह रत्नत्रय के स्वरूप का कथन है। यहाँ प्रथम व्यवहार की बात करते हैं, परंतु इसका अर्थ ऐसा नहीं है कि व्यवहार पहले है और निश्चय बाद में। साधक जीव को निश्चय का भान है, अखंड ज्ञानस्वभाव की श्रद्धा-ज्ञान है; किंतु जब अपने स्वभाव में स्थिर नहीं हो पाता तब विकल्पवाला शुभराग कैसा होता है, उस व्यवहाररत्नत्रय का स्वरूप बताते हैं, निश्चयसम्यक्त्व प्रकट हुए जीव को व्यवहारश्रद्धा कैसी होती है-वह बताते हैं। भगवान सर्वज्ञ वीतराग के अतिरिक्त अन्य किसी कुदेवादि में से श्रद्धा होती नहीं, पंचपरमेष्ठी के प्रति विपरीत

अभिप्रायरहित सच्ची श्रद्धा होती है, वही श्रद्धा मोक्ष की सिद्धि का परंपरा हेतु है। जीव अपने कारणपरमात्मा की श्रद्धा है और उसी के आश्रय से मोक्ष प्राप्त होगी, इसलिए पंच परमेष्ठी की श्रद्धा के राग को व्यवहार से परंपरा हेतु कहा है; तथा भगवान द्वारा कथित स्वरूप संबंधी श्रद्धा में उसको कुछ भी दोष नहीं होता; भगवान ने स्वरूप कहा वैसे ही होगा, अथवा अन्य प्रकार से होगा—ऐसी चंचलता, मलिनता अथवा अगाढ़ता रहित श्रद्धान उसके होता है।

रागी-द्वेषी, अनेक प्रकार के देवों द्वारा प्ररूपित स्वरूप विपरीत है, ऐसे विपरीत अभिप्राय का उसके अभाव है। अन्यमत कथित सत्य है या भगवान जिनेन्द्र कथित सत्य है—इसप्रकार जो डाँवाडोल है, उसके तो व्यवहार का भी ठिकाना नहीं है। भगवान कथित स्वरूप की जिसे अडिग श्रद्धा है, और उसमें किंचित् भी दोष नहीं—ऐसा जीव यदि निश्चयसम्यग्दर्शन प्रकट करे तो उसकी रागवाली श्रद्धा को व्यवहारसम्यक्त्व कहते हैं।

संशय, विपरीतता और अजानपना के दोषरहित पदार्थों का ज्ञान वह व्यवहार-सम्यग्ज्ञान है।

यहाँ व्यवहारसम्यग्ज्ञान की बात चलती है, वह भी त्रिदोषरहित होना चाहिये। वीतराग सच्चा देव है अथवा अन्यमत में कथित देव सच्चा है—ऐसी मान्यता वह शंका दोष है। भगवान कथित अनेकांत स्वरूप से विपरीत ज्ञान करना और एकांतक्षणिक आदि कहनेवाले बुद्धिादि के कहे पदार्थों का ज्ञान करना और उसको सम्यग्ज्ञान जानना वह विमोह दोष है। वस्तुस्वरूप से अजानपना वह विभ्रम दोष है। जो जीव आत्मज्ञान प्रकट करते हैं, उनका उपर्युक्त तीनों दोषों से रहित ज्ञान व्यवहारसम्यग्ज्ञान है।

हिंसादि से निवृत्ति के परिणाम और अट्ठाईस मूलगुण का पालन वह व्यवहारचारित्र है।

अब, व्यवहारचारित्र का कथन करते हैं। जिस मुनि को आत्मभान है, और स्वरूप की अंतर्लीनता वर्तती है, ऐसे जीव को विकल्पात्मक दशा में हिंसा से निवृत्ति के परिणाम तथा अट्ठाईस मूलगुणों का पालन होता है। पंच महाव्रतादि के पालन को व्यवहारचारित्र कहते हैं।

इसप्रकार भेदोपचार रत्नत्रय परिणति होती है।

इस व्यवहार का अधिकार यहाँ शुद्धभाव में क्यों डाल दिया ?—ऐसा कोई प्रश्न करे तो उससे कहते हैं कि वह यथास्थान ही रखा गया है। जो जीव अनादि-अनंत शुद्धभाव के आधार

से निश्चयसम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रकट करता है, उसे विकल्पात्मक दशा में कैसे विकल्प होते हैं और उन विकल्पों में कौन निमित्त होता है-वह बताते हैं। राग के समय श्रद्धा पंचपरमेष्ठी की ही होती है, ज्ञानी की वीतरागी वाणी ही सुनता है, अज्ञानी की वाणी निमित्त नहीं होती, उसका शास्त्रज्ञान भी दोष रहित होता है; इसप्रकार निश्चय के साथ व्यवहार और निमित्त का सुमेल कैसा होता है वह बराबर बताने में आया है, इसलिये यहाँ शुद्धभाव में व्यवहार का कथन यथास्थान—यथावसर है।

समस्त वस्तुओं को यथार्थ बतानेवाली भगवान की वाणी तथा शास्त्र सम्यग्दर्शन में बाह्य निमित्त हैं।

''इसप्रकार भेदोपचार परिणति है, उसमें जिनप्रणीत हेय-उपादेय तत्त्वों का ज्ञान वही सम्यग्ज्ञान है। इस सम्यक्त्वपरिणाम का बाह्य सहकारी कारण वीतराग सर्वज्ञ के मुखकमल से निकला हुआ समस्त वस्तु के प्रतिपादन में समर्थ ऐसा द्रव्यश्रुतरूप तत्त्वज्ञान ही है।''

पंचपरमेष्ठी की श्रद्धा वह व्यवहारसम्यग्दर्शन है। शुद्धजीवतत्त्व उपादेय है और पुण्य-पापादिभाव हेय हैं—ऐसा हेय-उपादेय तत्त्व का ज्ञान वह व्यवहारज्ञान है तथा पंचमहाव्रतादि के परिणाम को व्यवहारचारित्र कहा है।

इस तरह भेदोपचार-रत्नत्रयपरिणति है।

अब, जीव अपने अखंडस्वभाव के आश्रय से निर्विकल्प श्रद्धा-ज्ञान प्रकट करे तब निमित्त कैसा होता है-वह बतलाते हैं। स्वयं ज्ञायकशक्ति से भरपूर है—ऐसी अंतर रागरहित प्रतीति वह सम्यग्दर्शन का परिणाम है और वह मोक्ष का मार्ग है। उस सम्यक्त्व के परिणाम का बाह्य सहकारी कारण भगवान द्वारा कथित वस्तुस्वरूप के प्रतिपादन में समर्थ ऐसा द्रव्यश्रुतरूप तत्त्वज्ञान ही है। भगवान की वाणी से सम्यग्दर्शन होता है—ऐसा कहना नहीं है, किंतु आत्मा में पुण्य-पाप के भाव होते हैं, वे विकार हैं, उनसे रहित आत्मा शुद्धचैतन्यस्वरूप है—ऐसी प्रतीति करने में किसकी वाणी निमित्त है? भगवान वीतराग सर्वज्ञदेव की वाणी अथवा शास्त्र जो अविरोधपने वस्तुस्वरूप बताते हैं, वे निमित्त होते हैं—अज्ञानी की वाणी निमित्त नहीं होती।

ज्ञानी धर्मात्मा सम्यग्दर्शन में अंतरंग निमित्त है।

''जो मुमुक्षु हैं, उन्हें भी उपचार से पदार्थनिर्णय के हेतुपना के कारण (सम्यक्त्व परिणाम का) अंतरंग हेतु कहा है, कारण कि उनके दर्शनमोहनीयकर्म के क्षयादिक हैं।''

जो सम्यग्दर्शन प्रकट करता है, उसे वाणी बाह्य निमित्त कही; अब धर्मात्मा ज्ञानी पुरुष अंतरंग निमित्त हैं—ऐसा बतलाते हैं। यहाँ मुमुक्षु में केवली को लेना नहीं, किंतु चौथे, पाँचवें, छठे गुणस्थान में वर्तते धर्मात्मा की बात है। जो आत्मा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रदशा को प्राप्त है, जिसने मोह का क्षय, उपशम अथवा क्षयोपशम किया है—ऐसा जीव अन्य जीव को अंतरंग हेतु होता है। धर्मात्मा जीव भी पर है, तथापि वाणी के निमित्तपने की अपेक्षा ज्ञानी के निमित्तपने को भेद बतलाने के लिये उसको अंतरंग हेतु कहा है। शास्त्र कहीं बोलता नहीं है, उसका रहस्य तो ज्ञानी पुरुष बतलाते हैं। उन ज्ञानी पुरुषों का अभिप्राय सामनेवाले जीव को उसके शुद्धस्वभाव की तरफ बढ़ाने का है—ऐसा अभिप्राय सामनेवाला जीव पकड़ता है, इसलिये जीव को अंतरंग हेतु कहा है।

चैतन्यमूर्ति आत्मा कारणपरमात्मा है। विकार, राग-द्वेष, अपूर्णता, वह आत्मा का वास्तविक स्वरूप नहीं है। आत्मा आनंदकंद है। पुण्य-पाप या निमित्त में से धर्मदशा होती नहीं, धर्म का कारण तो शुद्धपरमात्मा है; ऐसे द्रव्यस्वभाव की प्रतीति सम्यग्दर्शन है। पंचपरमेष्ठी की श्रद्धारूप व्यवहारसम्यक्त्व निश्चयसम्यग्दर्शन में निमित्त है। अपने कारणपरमात्मा के आश्रय से प्रकट होनेवाला ज्ञान वह निश्चयसम्यग्ज्ञान है, उसमें विपरीत दोष रहित पदार्थों का हेय-उपादेय तत्त्वों सहितवाला व्यवहारज्ञान निमित्त है; और अपने कारणपरमात्मा के आश्रय से प्रकट होनेवाली वीतरागदशा वह चारित्र है, उसमें पंच महाव्रतादि के परिणामरूप व्यवहारचारित्र निमित्त है। यह बतलाते हुए भगवान की वाणी तथा शास्त्र को बाह्य निमित्त कहा है, तथा धर्मात्मा ज्ञानी को अंतरंग निमित्त कहा है। [शेष अगले अंक में]

गाँव-गाँव में वीतराग-विज्ञान पाठशालाएँ खोलिये।

द्रव्यसंग्रह प्रवचन

वृहद्द्रव्यसंग्रह पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन सन् १९५२ में हुए थे। जिज्ञासु पाठकों के लाभार्थ उन्हें यहाँ क्रमशः दिया जा रहा है।

[गतांक से आगे]

देखो! सम्यक्त्व की महिमा जिसके बल से अनेकों महापुरुष सिद्धदशा को प्राप्त हुये, आज भी हो रहे हैं, तथा भविष्य में भी होते रहेंगे।

वीतरागी सर्वा भगवान की देशना के अनुसार षट्खंडागम आदि आगम ग्रंथों की रचना हुई, उनमें कालद्रव्य सहित छहद्रव्यों का वर्णन है, युक्ति से भी काल की सिद्धि होती है। इसलिये अविरोधपने छह द्रव्य मानना चाहिये। भगवान के वचन प्रमाण हैं। वीतराग-धर्म अलौकिक है-भाई! यह वाद-विवाद का विषय नहीं है। निमित्त है, व्यवहार है, परंतु उनसे कार्य अथवा कल्याण नहीं होता है। योग्यतारूप उपादान से कार्य और आत्मा के आश्रय से कल्याण होता है। सर्वत्र यथायोग्य निमित्त अथवा व्यवहार होता ही है।

अज्ञानी जीव कहता है कि निमित्त उपादान में कुछ करे—ऐसा मानने पर ही निमित्त को मानना सही मानना है। परंतु यह उसकी भूल है। जो जैसा है, उसे वैसा ही मानना चाहिये। निमित्त का हस्तक्षेप उपादान में थोड़ा भी नहीं है।

मुनि के नग्नदशा होती है। धर्मीजीव को छह द्रव्य, सात तत्त्व, नौ पदार्थ इत्यादि का ज्ञान होता है, सच्चे देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा होती है; परंतु उनसे धर्म नहीं होता, धर्म तो अपने स्वभाव के आश्रय से ही होता है।

आत्मा की श्रद्धा हो जाने पर धर्म और सच्चे देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा हो जाती है। यथार्थतया धर्मी को निमित्तपने सच्चे देव-गुरु-शास्त्र, छह द्रव्य, सात तत्त्व आदि की यथार्थ श्रद्धा और यथार्थ ज्ञान होता ही है। मुनि अवस्था में नग्न दशा होती ही है। परंतु आत्मज्ञान के बिना ये सब निरर्थक हैं। इसलिये आत्मज्ञान-श्रद्धान को ही महत्त्व दिया जाता है और कल्याण भी निजस्वभाव के अवलंबन से ही होता है।

अज्ञानियों से वाद-विवाद नहीं करना चाहिये। क्योंकि वाद-विवाद करने से राग-द्वेष की उत्पत्ति होती है और संसार में भटकना पड़ता है।

अब आचार्य पंचास्तिकाय का वर्णन करते हैं :—

एवं छब्भेयमिदं जीवाजीवप्पभेददो दव्वं।
उत्तं कालविजुत्तं णायव्वा पंच अत्थिकाया दु॥२३॥
संति जदो तेणेदे अत्थीति भणंति जिणवरा जम्हा।
काया इव बहुदेसा तम्हा काया य अत्थिकाया य॥२४॥

जीव और अजीव के प्रभेद से द्रव्य छह प्रकार के हैं। कालद्रव्य के अतिरिक्त शेष पाँच द्रव्य अस्तिकाय समझने चाहिये। जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश—ये पाँचों द्रव्य अस्तिकाय हैं।

लोक में जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश—पाँचों ही द्रव्य विद्यमान हैं, इसलिये इनको 'अस्ति' तथा शरीर के समान बहुप्रदेशी होने से इन्हें काय कहते हैं। दोनों मिलकर 'अस्तिकाय' होते हैं। जिसप्रकार शरीर बहुत परमाणुओं का पिंड है; उसीप्रकार आत्मा की काया भी असंख्य प्रदेशी है। आत्मा का जो पहला प्रदेश है, वही दूसरा प्रदेश नहीं है; फिर भी आत्मा अखंड है, खंड-खंड नहीं।

पाँचों ही द्रव्यों के केवल 'अस्तित्व' से युक्त होने के कारण 'अस्ति' संज्ञा और केवल 'कायत्व' से युक्त होने के कारण 'काय' संज्ञा नहीं है, अपितु दोनों के मिलाप से 'अस्तिकाय' संज्ञा है।

अब पाँचों द्रव्यों में संज्ञा, लक्षण, प्रयोजन आदि की अपेक्षा भेद और अस्तित्व की अपेक्षा अभेद है—यह बतलाते हैं। जीव का नाम जीव, पुद्गल का नाम पुद्गल आदि नाम भेद है। जीव का लक्षण चेतन, पुद्गल का लक्षण स्पर्शत्वादि, धर्मद्रव्य का लक्षण गतिहेतुत्व आदि लक्षणभेद है। इसीतरह प्रयोजन की अपेक्षा भी भेद है—क्योंकि सभी का प्रयोजन भिन्न-भिन्न है। तथा सभी द्रव्यों में 'है' अर्थात् अस्तित्व की अपेक्षा कोई भेद नहीं है।

शुद्धजीवास्तिकाय अर्थात् मुक्तजीव में सिद्धत्व लक्षण शुद्धव्यंजनपर्याय है। यहाँ संपूर्ण आत्मा की द्रव्य पर्याय को व्यंजनपर्याय कहा है। केवलज्ञान, आनंद आदि विशेष गुण और अस्तित्व, वस्तुत्व आदि सामान्य गुण हैं।

निगोदादि अवस्था को प्राप्त जीवों की अशुद्ध दशा और मुक्त अवस्था को प्राप्त जीवों की शुद्ध दशा है—इसप्रकार अंतर है। परंतु अस्तिपने की अपेक्षा सिद्ध जीवों और निगोदिया जीवों

के अस्तित्व में कोई अंतर नहीं है। जैसे मनुष्यों में राजा और रंक की अपेक्षा अंतर है, परंतु मनुष्यत्व की अपेक्षा दोनों समान ही हैं; वैसे ही जीवों में पूर्णज्ञान और अल्पज्ञान की अपेक्षा अंतर है, परंतु सभी जीवों में ज्ञान के अस्तित्व की अपेक्षा समानता है।

तथा मुक्तदशा में अव्याबाध अर्थात् बाधारहित अनंत सुख आदि अनंत गुणों की प्रगटतारूप कार्यसमयसार का उत्पाद होता है। रागी जीव के यह उत्पाद कदापि नहीं होता है। उसको राग का उत्पाद, अज्ञानी को अज्ञान का उत्पाद, धर्मी को सम्यग्दर्शन का उत्पाद होता है।

इसप्रकार उत्पाद की विभिन्न अवस्थायें होने पर भी उत्पादसामान्य की अपेक्षा सभी सत्स्वरूप हैं।

किसी की स्मरणशक्ति बहुत होती है, किसी की कम। कोई निगोदपर्याय में उत्पन्न होता है, कोई देवपर्याय में। कोई सिद्धावस्था प्राप्त करता है, तो कोई निगोदादि अवस्था को। इत्यादि अवस्थाओं के उत्पाद में विशेषापेक्षा से भेद होकर भी उत्पादसामान्य के अस्तित्व में भेद नहीं है। यह नहीं कहा जा सकता है कि सिद्धपर्याय सत् है और निगोद आदि पर्यायें असत्।

पाँचों अस्तिकाय द्रव्यों का उत्पाद भिन्न-भिन्न होकर भी उत्पादसामान्य की अपेक्षा सदृश ही है। एक जीव को मिथ्यात्व पर्याय का उत्पाद होता है; तो एक जीव को सम्यक्त्व पर्याय का उत्पाद होता है। किसी को ज्ञान का उघाड़ कम होता है, तो किसी को अधिक, कोई सुखी होता है, तो कोई दु:खी।

इसप्रकार उत्पाद की अवस्थाओं में भिन्नता होने पर भी उत्पादसत् की अपेक्षा कोई भेद नहीं है।

उत्पादसामान्य की सदृशता बताने के बाद व्ययपने की सदृशता बताते हैं।

सिद्धदशा उत्पन्न होने पर रागादि विभावों से रहित परमस्वास्थ्यस्वरूप कारणसमयसार का व्यय होता है।

सिद्धावस्था को प्राप्त जीवों के संसार अवस्था का व्यय होता है। तथा किसी अन्य जीव के नरक पर्याय का व्यय, किसी के सम्यक्त्व का व्यय, किसी के मिथ्यात्व का व्यय, किसी परमाणु में नीली पर्याय का, किसी में पीली पर्याय का व्यय होता है। इत्यादि विभिन्नता के कारण व्यय के प्रकार पृथक्-पृथक् हैं; परंतु सभी व्ययसामान्य की अपेक्षा समान हैं। व्यय के अस्तित्व में कोई भेद नहीं है।

प्रत्येक द्रव्य के द्रव्य-गुण-पर्याय में सत्ता, लक्षण, प्रयोजन आदि भेद हैं; परंतु अस्तित्व अपेक्षा कोई भेद नहीं है। अब उत्पादसत्, व्ययसत् और ध्रुवसत् की बात करते हैं। जिस द्रव्य की जिस पर्याय का उत्पाद हुआ वह उसका उत्पादसत् है। अज्ञानी का अज्ञान पर्यायपने सत् है। केवलज्ञानी का केवलज्ञान भी सत् है—यहाँ सत् का अर्थ यह है कि जो पर्याय जिस समय में होनी है, वह उसी समय होगी, अन्य समय में नहीं।

प्रत्येक वस्तु उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य लक्षणवाली है, सत् है; तथा प्रत्येक समय प्रत्येक वस्तु में तीनों ही अंश होते हैं।

परमात्मदशा प्रकट होने पर रागादि विभावों से रहित मोक्षमार्गरूपदशा का व्यय हुआ। व्यय सर्वथा अभावरूप नहीं है; वह भी सत् है।

मोक्षमार्गरूपीदशा का व्यय हुआ, उसी समय परमात्मदशा का उत्पाद हुआ तथा उत्पाद और व्यय दोनों की आधारभूत वस्तु ध्रुव रही; यह ध्रुवसत् रहा। इसप्रकार वस्तु में तीनों ही अंश सत् हैं। [क्रमशः]

ज्ञान-गोष्ठी

सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा पूज्य स्वामीजी से किये गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उत्तर।

प्रश्न : 'पूर्णता के लक्ष्य से प्रारंभ सो प्रारंभ' ऐसा श्रीमद् राजचंद्रजी ने कहा है। यहाँ पूर्णता के लक्ष्य से प्रारंभ में त्रिकाली द्रव्य को लेना अथवा केवलज्ञान पर्याय को लेना? कृपया स्पष्टीकरण कीजिये।

उत्तर : यहाँ पूर्णता के लक्ष्य में साध्यरूप केवलज्ञान पर्याय लेना। त्रिकाली द्रव्य तो ध्येयरूप है। केवलज्ञान उपेय है और साधकभाव उपाय है। उपाय का साध्य उपेय केवलज्ञान है।

प्रश्न : पर्याय स्वयं षट्कारक से स्वतंत्र परिणमती है और पर्याय को पर्याय का अपना ही वेदन है तो ध्रुव का क्या प्रयोजन है ?

उत्तर : ध्रुवद्रव्य वह तो मूल वस्तु है। ध्रुव का लक्ष्य करने पर ही पर्याय में आनंद का वेदन आता है, इसीलिए ध्रुव मूल वस्तु है।

प्रश्न : चैतन्य त्रिकाली ध्रुव भगवान आत्मद्रव्य दृष्टि में आने पर नियम से पर्याय में आनंद का वेदन आता है। इसी पर्याय को अलिंगग्रहण के २०वें बोल में आत्मा कहा है। त्रिकाली ध्रुव भगवान के ऊपर दृष्टि पड़ने पर आनंद का अनुभव होता है, तभी द्रव्यदृष्टि हुई कही जाती है। यदि आनंद का वेदन न हो तो उसकी दृष्टि द्रव्य पर गई ही नहीं। जिसकी दृष्टि द्रव्य के ऊपर जावे उसको अनादिकालीन राग का वेदन टालकर आनंद का वेदन पर्याय में होगा। ऐसी दशा में उसकी दृष्टि में द्रव्य आया है, तथापि वेदन में द्रव्य आता नहीं, क्योंकि पर्याय द्रव्य का स्पर्श करती नहीं। प्रभु की पर्याय में प्रभु का स्वीकार होने पर उस पर्याय में प्रभु का ज्ञान आता है, किंतु पर्याय में प्रभु का—द्रव्य का वेदन आता नहीं। यदि वेदन में द्रव्य आवे तो द्रव्य का नाश हो जाये, परंतु द्रव्य तो त्रिकाल टिकनेवाला है, इसलिये वह पर्याय में आता नहीं, अर्थात् पर्याय सामान्यद्रव्य को स्पर्श नहीं करती—ऐसा कहा।

प्रश्न : नियमसारजी में एक आत्मतत्त्व को ही साररूप कहा, संवर-निर्जरा-मोक्षतत्त्व को साररूप नहीं कहा। इसमें क्या रहस्य है ?

उत्तर : आत्मा ही एक सर्व तत्त्वों में साररूप है। संवर-निर्जरा और मोक्ष यद्यपि उत्पन्न करने की अपेक्षा से हितरूप और साररूप कहे जाते हैं, फिर भी नियमसारजी में उन्हें साररूप नहीं कहा। उसका कारण यह है कि वे सब पर्यायें हैं, नाशवान हैं, क्षणिक हैं; और आत्मा तो अविनाशी ध्रुव होने से साररूप है। संवरादि तत्त्व तावे नाश पाने योग्य भाव हैं, उनसे अविनाशी भगवान आत्मा दूर है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र-वीर्यादिभाव पर्याय हैं—विनाशीक हैं, अतः साररूप नहीं हैं। अविनाशी भगवान आत्मा साररूप होने से विनाशीक भावों से दूर है। आहाहा! पर्याय के समीप ध्रुव भगवान पड़ा है, वही एक साररूप होने से दृष्टि में लेने योग्य है—शेष सर्व असार है।

प्रश्न : एकमात्र अध्यवसान ही बंध का कारण है, बाह्यवस्तु बंध का कारण नहीं; तब क्या बाह्यवस्तु के बिना बंध होता है ?

उत्तर : शुभ-अशुभरूप अध्यवसान एक ही बंध का कारण है, तदतिरिक्त अन्य कोई बाह्यवस्तु भी बंध का कारण होती हो—ऐसा है नहीं। पुण्य-पापरूपभावों में एकत्वबुद्धिरूप जो अध्यवसान है वही एक बंध का कारण है। बाह्यवस्तु अध्यवसान होने का कारण-निमित्त तो होती है क्योंकि बाह्यवस्तु का आश्रय करके ही अध्यवसान होता है, फिर भी बाह्यवस्तु बंध का कारण तो कदापि होती नहीं। सम्यग्दृष्टि चक्रवर्ती के ९६ करोड़ पैदल सेना और ९६ हजार रानियाँ आदि बाह्यवैभव है, परंतु वह सब कुछ बंध का कारण नहीं है; बंध का कारण तो एकमात्र अध्यवसान ही है, बाह्यवस्तु रंचमात्र भी बंध का कारण नहीं है। यदि बाह्यवस्तु बंध का कारण होती हो तो सम्यग्दृष्टि चक्रवर्ती तथा तीर्थंकरादिक के प्रभूत अनुकूल सामग्री होती है, किंतु उनको अध्यवसान के अभाव होने से वह बाह्य सामग्री बंध का कारण नहीं होती। एक अध्यवसान ही बंध का कारण और संसार की जड़ है, इसलिये उसी से नरक-निगोदादि चौरासी के अवतार होते हैं।

प्रश्न : यदि बाह्यवस्तु बंध का कारण नहीं है तो शास्त्रों में बाह्यवस्तु के त्याग करने का उपदेश क्यों दिया ?

उत्तर : बाह्यवस्तु बंध का कारण है ही नहीं, क्योंकि वह बाह्यवस्तु अपनी आत्मा के द्रव्य-गुण में तो है ही नहीं और पर्याय में भी उसका अभाव है, अतः वह बंध का कारण नहीं है। हाँ, इतना अवश्य है कि बंध का कारण जो अध्यवसान है वह बाह्यवस्तु के आश्रय से ही होता है, बिना उसके आश्रय के नहीं होता; इसलिये बंध के कारण का कारण मानकर बाह्यवस्तु के भी त्याग का उपदेश जिनवाणी में किया गया है।

समाचार दर्शन

पूज्य श्री कानजीस्वामी की जन्म-जयंती धूमधाम से मनायी गयी

बम्बई (मलाड़) :- निर्धारित कार्यक्रमानुसार दिनांक २-४-८० से १६-४-८० तक आध्यात्मिक सत्पुरुष पूज्यश्री कानजीस्वामी का कार्यक्रम यहाँ था। परंतु अस्वस्थता के कारण उनके प्रवचन ९-४-८० से आरंभ हो सके। स्थानीय गोशाला लेन पर स्थित रामलीला मैदान में बने विशाल अलंकृत पंडाल में प्रात: ८.१५ से ९.१५ तथा दोपहर में ३ से ४ तक प्रतिदिन अपके आध्यात्मिक प्रवचन चलते थे। स्थानीय लोगों के अतिरिक्त अनेक प्रान्तों से पधारे हजारों आत्मार्थी बंधुओं ने धर्मलाभ लिया। लगभग १०-११ हजार की जनता प्रतिदिन प्रवचन का लाभ लेने आती थी।

१६ अप्रेल को पूज्य गुरुदेवश्री का ९१वाँ जन्मदिवस उल्लासपूर्वक मनाया गया। पंडित बाबूभाई मेहता, डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल, ब्रह्मचारी माणिकचंदजी चंवरे कारंजा, श्री हीराभाई भीखाभाई दहेगाँव, श्री चिमनभाई ठाकरसी बम्बई तथा श्री रसिकभाई बम्बई आदि ने पूज्य स्वामीजी द्वारा वर्तमान समय में हुई धर्मप्रभावना के प्रति आभार व्यक्त करते हुए उनके दीर्घ जीवन की कामना की। इस अवसर पर लगभग २० हजार का सत्साहित्य बिका एवं आत्मधर्म हिन्दी के २७ आजीवन तथा अनेक वार्षिक ग्राहक बने। आत्मधर्म गुजराती, मराठी तथा जैनपथ प्रदर्शक के भी अनेक ग्राहक बने।

इस अवसर पर स्वामीजी के ९१वें जन्म-दिवस के उपलक्ष्य में सोनगढ़ ट्रस्ट को ज्ञान प्रचार के लिये २ लाख से अधिक के वचन प्राप्त हुए। साथ ही प्रवचन रत्नाकर के प्रस्तावित तीस भागों के हिंदी में प्रकाशन के लिये टोडरमल स्मारक, जयपुर को भी २ लाख १६ हजार के वचन प्राप्त हुए। १३ अप्रेल को पूज्य बहिनश्री को हीरों द्वारा बधाई दी गई तथा उन्हें अभिनंदन-पत्र भेंट किया गया। हीरों के मूल्य की राशि को ज्ञान प्रचार में भेंट की जावेगी।

इस प्रसंग पर पंडित लालचंदभाई मोदी तथा पंडित ज्ञानचंदजी विदिशा के प्रवचनों के अतिरिक्त १३ अप्रेल से १५ अप्रेल तक डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल के 'क्रमबद्धपर्याय' पर गंभीर प्रवचन हुए।

इसी अवसर पर प्रवचन रत्नाकर भाग १ एवं डॉ० भारिल्ल की अनुपम कृति

'क्रमबद्धपर्याय' के गुजराती अनुवाद का विमोचन हुआ। घाटकोपर भजन मंडली तथा अ० भा० जैन युवा फैडरेशन की गुना शाखा द्वारा प्रस्तुत कार्यक्रम बहुत ही रोचक रहे।

— अखिल बंसल

विदिशा :- दिनांक १६-४-८० को पूज्य कानजीस्वामीजी की ९१वीं जन्म-जयन्ती के उपलक्ष्य में श्री मोतीलालजी की अध्यक्षता में एक सभा का आयोजन किया गया। सभा को संबोधित करते हुए पंडित जवाहरलालजी, पंडित लखमीचंदजी, पंडित नंदकिशोरजी गोयल, पंडित लालजीरामजी, श्री बाबूलालजी एडवोकेट, श्री सुरेशचंदजी एडवोकेट, श्री राजकुमारजी एडवोकेट, डॉ० आर० के० जैन तथा श्री विद्यानंदजी आदि ने अपने विचार व्यक्त करते हुए पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा हो रही धर्मप्रभावना की चर्चा की तथा उनके शतायु होने की कामना की।

जयपुर (राज०) :- १६ अप्रेल ८० को पूज्यश्री कानजीस्वामी का ९१वाँ जन्म-दिवस स्थानीय टोडरमल स्मारक भवन में मनाया गया। पाँच बजे प्रभात मंगलगान, प्रातः सात बजे सामूहिक जिनेन्द्र-पूजन हुई। दिन में दो बार दो घंटे गुरुदेवश्री के टेप प्रवचन सुने गये।

रात्रि में सामूहिक भक्ति के पश्चात् ७.३० से १०.३० तक श्री तेजकरणजी डंडिया की अध्यक्षता में सभा आयोजित की गयी। इस सभा में अनेक गणमान्य व्यक्तियों ने भाग लिया। अनेक वक्ताओं ने पूज्य स्वामीजी के व्यक्तित्व और कर्तृत्व पर प्रकाश डालते हुए उनके प्रति श्रद्धा व्यक्त की, उनके दीर्घायु होने की कामना की।

ब्रह्मचारी यशपालजी एलोरा (महाराष्ट्र) ने कहा कि पूज्य स्वामीजी ने अध्यात्म के रहस्य को खोलकर धर्म का मर्म बताया है। प्रेमशांति पब्लिक हा० से० स्कूल के प्राचार्य श्री प्रेमचंदजी छाबड़ा ने स्वामीजी के प्रति उद्‌गार प्रगट करते हुए कहा—आज बालकों में जवानी चढ़ने से पूर्व ही धर्म के प्रति जो रुचि जागृत हो रही है, इसका संपूर्ण श्रेय पूज्य स्वामीजी को है।

श्री टोडरमल दि० जैन सिद्धांत महाविद्यालय के प्राचार्य श्री रतनचंदजी भारिल्ल ने भाव-विभोर होकर पूज्य स्वामीजी के अंतर्बाह्य व्यक्तित्व से शिक्षा लेने की प्रेरणा दी।

इसी अवसर पर टोडरमल महाविद्यालय के छात्रों द्वारा भाषण एवं सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किये गये तथा 'टोडरमल क्लब' द्वारा एक निबंध प्रतियोगिता आयोजित की गयी—जिसका विषय था 'कानजीस्वामी मेरी दृष्टि में'।

श्री ताराचंदजी गंगवाल जयपुर ने स्वामीजी की ९१वीं जन्मजयंती के अवसर पर तत्त्व प्रचारार्थ स्वामीजी के ९१वें जन्म-दिन के उपलक्ष्य में 'पाँच इक्यानवें' अर्थात् ९१×५=४५५ रुपये प्रदान किये और कहा कि स्वामीजी के सान्निध्य से मेरा जीवन सफल हो गया। सभा का संचालन श्री सुदीपकुमार शास्त्री ने किया। **—श्रीयांस जैन**

सागर (म०प्र०) :- दिनांक १६-४-८० को स्थानीय मुमुक्षु मंडल के तत्त्वावधान में पूज्य कानजीस्वामीजी की ९१वीं जन्म-जयंती उत्साहपूर्वक मनायी गयी। विविध कार्यक्रमों के अतिरिक्त रात्रि में सेठ भगवानदासजी की अध्यक्षता में एक सभा का आयोजन किया गया। सभा में पंडित जगन्मोहनलालजी शास्त्री कटनी वालों ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा—''पूज्य कानजीस्वामी निश्चितरूप से हमारी दिगंबर जैन समाज के मूर्धन्य विद्वान, जिनवाणी के प्रभावी प्रचारक, युगांतकारी महापुरुष हैं। कानजी स्वामी का विरोध तभी से शुरु हुआ जब से उन्होंने अपने आपको शुद्ध (तेरहपंथी) आम्नाय का घोषित किया है। आपने समयसार घर-घर में पहुँचा दिया है; वास्तव में समयसार मुनियों के लिये ही नहीं, अपितु अज्ञानी मिथ्यादृष्टि श्रावक के भी पढ़नेयोग्य अपूर्व ग्रंथ है। देवी-देवताओं को पूजनेवाले मुनि सच्चे साधु नहीं हैं।'' डॉ० पन्नालालजी साहित्याचार्य ने कहा—कानजीस्वामी वास्तव में दिगम्बर जैनधर्म और जिनवाणी के सच्चे प्रचारक हैं। उनके द्वारा दिगम्बरों की कुरीतियाँ नहीं अपनाये जाने के कारण ही उनका विरोध किया जा रहा है। इनके अतिरिक्त पंडित ताराचंदजी सर्राफ, पंडित मुन्नालालजी रांघेलीय, पंडित दयाचंदजी शास्त्री, पंडित मुन्नालालजी समगौरया, पंडित कपूरचंद भायजी, पंडित बाबूलालजी तथा श्री कपूरचंदजी बंडावालों ने अपने-अपने विचार व्यक्त करते हुए पूज्य गुरुदेवश्री के दीर्घजीवी होने की कामना की। इस अवसर पर लगभग २५००) रुपये का सत्साहित्य बिका। **—मन्नूलाल एडवोकेट**

दिल्ली (डिप्टीगंज) :- स्थानीय धर्मपुरा दिगंबर जैनमंदिर में पूज्य कानजीस्वामी की जन्म-जयंती उल्लासपूर्वक मनायी गयी। प्रातः सामूहिक पूजन तथा दोपहर में जिनेन्द्र भक्ति का आयोजन किया गया। इस अवसर पर पंडित प्रकाशचंदजी 'हितैषी' का समयसार पर सारगर्भित प्रवचन हुआ। अनेक गणमान्य व्यक्तियों ने पूज्य गुरुदेवश्री के चरणों में श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए उनके दीर्घायु होने की कामना की। महिलाश्रम की ६० महिलाओं एवं बालाश्रम के ११२ विद्यार्थियों को भोजन कराया गया। **— ज्ञानचंद जैन**

दिल्ली (शाहदरा) :- स्थानीय जैन मुमुक्षु मंडल, जैनधर्म प्रसार समिति एवं जैन युवा फैडरेशन के तत्त्वावधान में पूज्य कानजीस्वामी का ९१वाँ जन्मोत्सव हर्षोल्लास से मनाया गया। जिनेन्द्र पूजन एवं शास्त्र स्वाध्याय के अतिरिक्त भू० पू० नगर निगम पार्षद श्री हरीशचंदजी जैन की अध्यक्षता में आयोजित सभा में पंडित प्रकाशचंदजी 'हितैषी', पंडित राजकिशोरजी बड़ौत, श्री लखमीचंदजी आदि अनेक वक्ताओं ने अपने विचार व्यक्त किये। इस अवसर पर ९१ घी के दीपक जलाये गये तथा मंदिर को सजाया गया। जैन तीर्थ क्षेत्रों की प्रदर्शनी भी लगायी गयी। **—इंद्र जैन**

जबेरा (म०प्र०) :- अ० भा० जैन युवा फैडरेशन की स्थानीय शाखा के तत्त्वावधान में पूज्य कानजीस्वामी की जन्म-जयंती सानंद मनायी गयी। अनेक वक्ताओं ने पूज्य स्वामीजी के जीवन पर प्रकाश डाला तथा उनके उपकार की चर्चा करते हुए चिरंजीवी होने की कामना की। **— विनोद सिंघई**

पंडित धन्नालालजी द्वारा धर्मप्रभावना

भीलवाड़ा (राज०) :- अ० भा० जैन युवा फैडरेशन की स्थानीय शाखा तथा जैन समाज के विशेष आमंत्रण पर पंडित धन्नालालजी पधारे। आपके १० दिन तक नियमित आध्यात्मिक प्रवचनों का आयोजन किया गया। जिससे समाज में विशेष धर्मप्रभावना हुई। **—निहाल अजमेरा**

उदयपुर (राज०) :- भीलवाड़ा के पश्चात् पंडित धन्नालालजी यहाँ पधारे। स्थानीय दि० जैन मुमुक्षु मंडल में तथा एक दिन उदासीन आश्रम में भी आपके प्रवचन हुए। **— उग्रसेन बंडी**

भिण्डर (राज०) :- स्थानीय जैन समाज के आमंत्रण पर उदयपुर के पश्चात् पंडित धन्नालालजी यहाँ पधारे। ५दिन तक हुए आपके प्रवचनों से समाज ने लाभ लिया। **— मीठालाल जैन**

नीमच (म०प्र०) :- कांकरिया-तलाई वेदी प्रतिष्ठा संपन्न होने के पश्चात् समाज के आमंत्रण पर पंडित धन्नालालजी यहाँ पधारे। यहाँ आपका एक प्रवचन हुआ।

जयपुर (राज०) :- २९ अप्रेल, १९८० को पंडित धन्नालालजी यहाँ पधारे। स्थानीय टोडरमल स्मारक भवन में आपका आध्यात्मिक प्रवचन हुआ। महाविद्यालय के छात्रों से मिलकर आपने बड़ी प्रसन्नता व्यक्त की। **— जतीशचंद जैन**

कलकत्ता :- स्थानीय दिगम्बर जैन युवक समिति के तत्त्वावधान में बड़े मंदिर एवं नये मंदिर में ४ मई से ७ मई तक डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल के 'क्रमबद्धपर्याय' एवं 'मोक्षमार्ग प्रकाशक' पर ६ सारगर्भित प्रवचन हुए। आपकी वक्तृत्व शैली से समाज अत्यधिक प्रभावित एवं लाभान्वित हुई। आभार प्रदर्शन करते हुए समाज की ओर से आगामी दशलक्षण पर्व पर पधारने के लिये आपसे सानुरोध निवेदन किया। **— कैलाशचंद जैन, मंत्री**

वेदी प्रतिष्ठाएँ सानंद संपन्न

जयपुर (राज०) :- स्थानीय आदर्शनगर दि० जैन मंदिर का रजत जयंती समारोह एवं नवनिर्मित कीर्तिस्तंभ (मानस्तंभ) की वेदी प्रतिष्ठा का कार्यक्रम २६ तथा २७ अप्रेल को विविध कार्यक्रमों के साथ सानंद संपन्न हुआ। प्रतिष्ठा का कार्य पंडित गुलाबचंदजी दर्शनाचार्य एवं उनके सहायक पंडित निर्मलकुमारजी ने संपन्न कराया। इस अवसर पर जयपुर, दिल्ली आदि अनेक नगरों में रहनेवाले मुल्तान दि० जैन समाज के अतिरिक्त समाज के अनेक गणमान्य श्रीमान् और विद्वान उपस्थित थे।

२६ अप्रेल को रात्रि में पंडित कैलाशचंदजी शास्त्री बनारस की अध्यक्षता में संपन्न विद्वान सम्मेलन में सर्वश्री पंडित खुशालचंदजी गोरावाला, पंडित रतनचंदजी भारिल्ल, पंडित भंवरलालजी न्यायतीर्थ, डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल, श्री ताराचंदजी प्रेमी तथा साहू श्रेयांसप्रसादजी आदि ने अपने विचार व्यक्त किये।

दूसरे दिन २७ अप्रेल को प्रात: काल जिनबिम्ब मानस्तंभ में विराजमान होने के पश्चात् भव्य रथयात्रा निकाली गयी जो रजत जयंती समारोह की सभा में परिणति हो गयी। श्री प्रेमचंदजी जैन (जैना वाच कं०) दिल्ली वालों की अध्यक्षता में संपन्न होनेवाले इस समारोह का उद्घाटन प्रसिद्ध उद्योगपति श्री रमेशचंदजी जैन दिल्ली ने किया। डॉ० कस्तूरचंदजी कासलीवाल द्वारा लिखित पुस्तक 'मुलतान दि० जैन समाज इतिहास के आलोक में' का विमोचन नवभारत टाइम्स के भू०पू० संपादक श्री अक्षयकुमारजी जैन दिल्ली ने किया। इस अवसर पर अनेक वक्ताओं ने अपने विचार व्यक्त किये जिनमें पंडित कैलाशचंदजी शास्त्री, साहू श्रेयांसप्रसादजी, डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल, पंडित मिलापचंदजी शास्त्री, डॉ० कस्तूरचंदजी कासलीवाल आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। अंत में साहू श्रेयांसप्रसादजी का अभिनंदन किया गया। समाज के मंत्री श्री जयकुमारजी जैन ने सामाजिक गतिविधियों का

परिचय दिया तथा अध्यक्ष श्री न्यामतरामजी ने आभार प्रदर्शन किया। उक्त प्रसंग पर लगभग ८००) रुपये का सत्साहित्य बिका।

कांकरिया तलाई (राज०) :-दिनांक २४-४-८० से २८-४-८० तक भगवान बाहुबली वेदी प्रतिष्ठा सानंद संपन्न हुई। वेदी प्रतिष्ठा का कार्य पंडित धन्नालालजी ग्वालियर एवं पंडित बाबूलालजी 'सौजन्य' ने संपन्न कराया। पंडित ज्ञानचंदजी विदिशा के समयसार एवं मोक्षमार्गप्रकाशक पर प्रतिदिन हृदयग्राही प्रवचन होते थे। डॉ० देवेन्द्रकुमारजी शास्त्री, नीमच के भी प्रवचन हुए। इस अवसर पर लगभग ७००) रुपये का सत्साहित्य बिका तथा कुन्दकुन्द कहान तीर्थसुरक्षा ट्रस्ट को २१००) रुपये से भी अधिक की धनराशि प्राप्त हुई। आत्मधर्म, जैनपथ प्रदर्शक तथा युवाभारती के अनेक ग्राहक बनाये गये।

टोडरमल महाविद्यालय के छात्र श्री अशोककुमारजी ने बालकों के द्वारा रोचक संवाद प्रस्तुत किये। श्री हजारीलालजी 'काका' एवं श्री प्रदीप गंधर्व के भजनों का कार्यक्रम भी आयोजित किया गया। अंतिम दिन भव्य रथयात्रा एवं जूलूस निकाला गया। उक्त वेदी प्रतिष्ठा में विद्वानों एवं प्रतिष्ठाचार्य की व्यवस्था युवा फैडरेशन द्वारा की गई थी। **— जयकुमार जैन**

आवश्यकता है—एक मैनेजर की जो टोडरमल दि० जैन सिद्धांत महाविद्यालय के छात्रावास की भोजन-व्यवस्था, अकाउन्ट और पत्र-व्यवहार का कार्य कर सके। वेतन योग्यतानुसार, निवास नि:शुल्क।

— मंत्री, टोडरमल दि० जैन सिद्धांत महाविद्यालय, ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४

बम्बई में युवा फैडरेशन की चार शाखाएँ गठित

बम्बई (मलाड़) :- आध्यात्मिक सत्पुरुष पूज्य श्री कानजीस्वामी के सान्निध्य में दिनांक १३ एवं १४ अप्रेल ८० को अ० भा० जैन युवा फैडरेशन का तृतीय वार्षिक अधिवेशन सानंद संपन्न हुआ। इस अवसर पर बम्बई, मलाड़, दादर तथा घाटकोपर में युवा फैडरेशन की चार शाखाएँ गठित की गई तथा लगभग साढ़े तीन सौ सदस्य बनाये गये। १३ अप्रेल को प्रात: पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी द्वारा झंडारोहण किया गया। अधिवेशन दो दौरों में संपन्न हुआ। अधिवेशन का शुभारंभ पंडित लालचंदभाई मोदी ने दीप प्रज्ज्वलित कर प्रारंभ किया। फैडरेशन के महामंत्री अखिल बंसल ने संस्था की गतिविधियों की संक्षिप्त परिचय दिया। फैडरेशन के अध्यक्ष ब्रह्मचारी पंडित जतीशचंदजी शास्त्री एवं मंत्री श्री परमात्मप्रकाश

भारिल्ल के अतिरिक्त डॉ० चन्दूभाई, डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल, पंडित ज्ञानचंदजी, श्री नेमीचंदजी पाटनी तथा श्री चिमनभाई ठाकरसी आदि ने अपने-अपने विचार व्यक्त करते हुए फैडरेशन द्वारा किये गये कार्यों की सराहना की। अधिवेशन के प्रथम दौर में कुछ समय तक पूज्य गुरुदेवश्री ने उपस्थित रहकर युवकों को मनोबल बढ़ाया। अधिवेशन के प्रथम दौर की अध्यक्षता श्री चिमनभाई शाह ने तथा द्वितीय दौर की अध्यक्षता पंडित बाबूभाई मेहता ने की। फैडरेशन के इस वर्ष के सर्वश्रेष्ठ कार्यकर्ताओं को सम्मानित भी किया गया। १४ अप्रेल को हुई कार्यकारिणी की बैठक में अनेक महत्त्वपूर्ण निर्णय लिये गये। १६ अप्रेल को बाहर से पधारे शाखाओं के प्रतिनिधियों का सम्मेलन हुआ जिसमें सभी ने शाखाओं द्वारा संचालित गतिविधियों का परिचय दिया तथा अनेक उपयोगी सुझाव भी दिये। अधिवेशन का संचालन पंडित अभयकुमारजी शास्त्री ने किया।

हमारे निरीक्षक महाराष्ट्र में

भारतवर्षीय वीतराग-विज्ञान पाठशाला समिति के निरीक्षक पंडित रमेशचंदजी जैन इटावा वालों ने महाराष्ट्र प्रांत के रिसोड़, हरार, मालेगाँव, चिखली, डोंणगाँव, देउलगांवराजा, मलकापुर, नांदुरा, खामगांव, अकोला, अंजनगाँवसुर्जी, परतबाड़ा, अमरावती, कारंजा, यवतमाल, दिग्रस, युसद, अरमखेड़, कलमुनरी, मुलावा, अनसिंह, हिंगोली, शिरड़शहापुर, समतनगर आदि नगरों का दौरा करके वाशीम (अकोला) में होनेवाले (१९ मई से ७ जून तक) शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर की परिभाषा, उपयोगिता तथा शिविर से होनेवाले लाभों को समझाकर वाशीम शिविर में पधारने की प्रेरणा दी। फलस्वरूप अनेक भाई-बहिनों ने शिविर में आने का संकल्प लिया है। तथा इन नगरों में चल रही वीतराग-विज्ञान पाठशालाओं का निरीक्षण भी किया। आपके सुझावों से पाठशालाओं के संचालन में गति आई।

— मंत्री, पाठशाला समिति

सूचना—ग्रीष्मकालीन परीक्षाएँ दि० ७ व ८ जुलाई १९८० को होंगी। इनमें सम्मिलित होने हेतु ३१ मई तक प्रवेशफार्म स्वीकृत किये जावेंगे। केन्द्राध्यक्ष महोदयों से निवेदन है कि उक्त तिथि से पूर्व ही फार्म भरकर भेजने की कृपा करें। जिनके पास फार्म न हों वे हमसे मंगा लेने का कष्ट करें।

—मंत्री, श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड, ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००१

प्रबंध संपादक की कलम से

कृपया निम्नलिखित सूचनाओं पर अवश्य ध्यान दें:—

(१) आत्मधर्म के जिन ग्राहकों की चंदे की अवधि समाप्त हो रही है, उन्हें आत्मधर्म के अंक के साथ मनिआर्डर फार्म भेजे गये हैं। कृपया मनिआर्डर फार्म प्राप्त होते ही उसे तुरंत भरकर भेज दें ताकि आपको आत्मधर्म नियमित प्राप्त हो सके।

(२) आत्मधर्म का वार्षिक चंदा अब ९) रुपये हो गया है। अत: मनिआर्डर भेजते समय ध्यान रखें। अब ६) रुपये के मनिआर्डर स्वीकार नहीं किये जायेंगे।

पाठकों के पत्र

खरगौन (म०प्र०) श्री राजकुमारजी जैन लिखते हैं—

आत्मधर्म पढ़कर अपूर्व शांति मिलती है। आत्मधर्म के माध्यम से जन-जन में सच्ची वीतराग वाणी का अलख जगाया जा रहा है, जिसे सुनकर तथा जीवों में हुई जागृति को देखकर इस पंचम काल में भी तीर्थंकर केवलियों के सद्भाव का अहसास होने लगता है तथा केवलियों के अभाव का विरह कम हो जाता है।

सागर (म०प्र०) से श्री निर्मलकुमार सिंघई, अध्यापक लिखते हैं—

आत्मधर्म पढ़कर अंतरात्मा गद्गद् हो उठती है। यह वास्तव में आत्मा का स्वरूप बतानेवाली अनोखी पत्रिका है। पूज्य स्वामीजी ने इसे अपने अनुभव द्वारा बहुत सरस बना दिया है।

आबूरोड (राज०) के सुधर्मास्वामी विद्यापीठ मानपुर से श्री सुमति मुनि लिखते हैं—

मैं और दूसरे मुनिगण आत्मधर्म को पढ़ते हैं। इसमें सम्यग्दर्शन के विषय में जानकारी बहुत सरल रूप में मिलती है। ज्ञानगोष्ठी से शंकाऐं दूर हो जाती हैं। यह मासिक-रत्न चिंतामणिरूप है।

अम्बाह (म०प्र०) से श्री दिनेशचंदजी जैन लिखते हैं—

आत्मधर्म पढ़ने से मेरे मन में अनेक परिवर्तन हुए हैं। आत्मधर्म के संपादकीय में प्रकाशित 'क्रमबद्धपर्याय' लेखमाला बहुत अच्छी लगी।

अवागढ़ (उ०प्र०) से श्री देवेन्द्रकुमारजी जैन लिखते हैं—

आपके सफल संपादन में आत्मधर्म का प्रत्येक अंक पत्रिका-जगत की अमूल्य निधि है। मार्च माह का अंक ऐसे स्वच्छ दर्पण की तरह प्रस्तुत किया है, जिसमें अध्यात्म-ज्ञान की ज्योति जगमगा रही है। संपादकीय तथा द्रव्यसंग्रह प्रवचन, वर्द्धमान वंदना एवं ज्ञानगोष्ठी आदि पर बड़े रोचक ढंग से प्रकाश डाला गया है।

कहान कथा : महान कथा

आलेख : अखिल बंसल, एम. ए.
चित्रकथा : अनन्त कुशवाहा

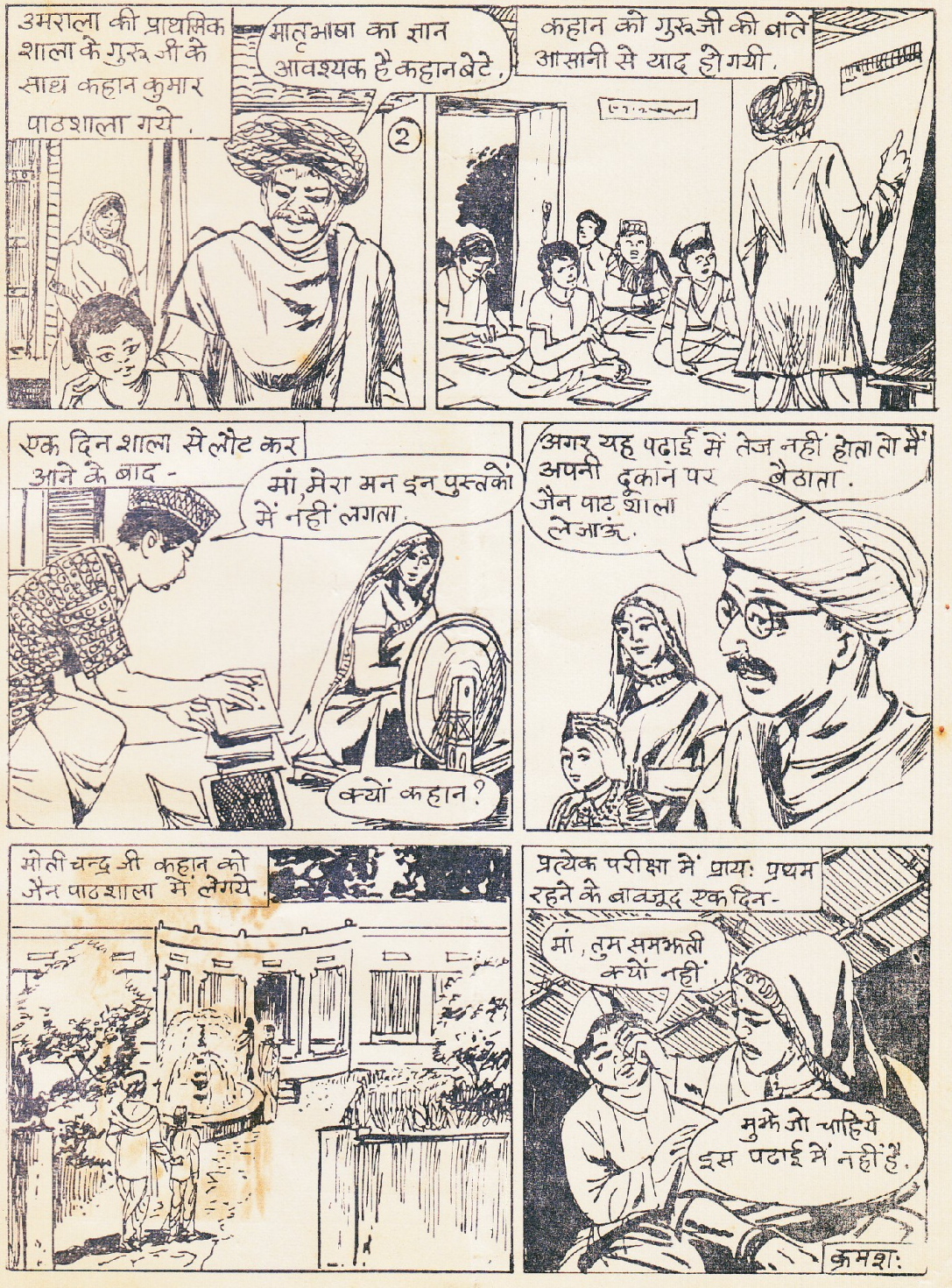

Registration. No. RJ-2712

हमारे यहाँ प्राप्त प्रकाशन *

समयसार	१४-००
मोक्षशास्त्र	१२-००
समयसार कलश टीका	६-००
प्रवचनसार	१२-००
पंचास्तिकाय	७-५०
नियमसार	७-५०
नियमसार पद्यानुवाद	०-४०
अष्टपाहुड़	१०-००
वृहद् द्रव्यसंग्रह	८-००
समयसार नाटक	७-५०
द्रव्यदृष्टिप्रकाश भाग ३	४-५०
समयसार प्रवचन भाग १	६-००
समयसार प्रवचन भाग २	७-००
समयसार प्रवचन भाग ३	७-००
समयसार प्रवचन भाग ४	८-००
पुरुषार्थसिद्धयुपाय	५-००
धर्म की क्रिया	२-००
श्रावकधर्म प्रकाश	४-००
द्रव्यसंग्रह	१-५०
प्रवचन परमागम	२-५०
लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	०-५०
जैनतत्त्व मीमांसा	६-००
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग १	१-५०
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग २	१-५०
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग ३	१-५०
वीतराग-विज्ञान भाग ३	१-००
मुक्ति का मार्ग	१-००
बालपोथी भाग १	०-६०
बालपोथी भाग २	०-६०
ज्ञानस्वभाव ज्ञेयस्वभाव	४-००
बालबोध पाठमाला भाग १	०-५०
बालबोध पाठमाला भाग २	०-७०
बालबोध पाठमाला भाग ३	०-८५
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग १	०-७०
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग २	१-००
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग ३	१-००
तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग १	१-२५
तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग २	१-४०
सुंदरलेख बालबोध पाठमाला भाग १	०-४०
A Short Reader to Jain Doctrines	०-७५
Tirthankar Bhagwan Mahavira	०-४०
Know Thyself	०-४०
मोक्षमार्गप्रकाशक	६-००
पंडित टोडरमल : व्यक्तित्व और कर्तृत्व	११-००
तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ	५-००
" " (पॉकेट बुक साइज में हिन्दी में)	२-००
मैं कौन हूँ ?	१-००
तीर्थंकर भगवान महावीर	०-४०
वीतरागी व्यक्तित्व : भगवान महावीर	०-२५
अर्चना (पूजा संग्रह)	०-४०
मैं ज्ञानानंद स्वभावी हूँ (कैलेंडर)	०-५०
युगपुरुष श्री कानजीस्वामी	१-००
वीतराग-विज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका	३-००
सत्य की खोज (भाग १)	२-००
आचार्य अमृतचंद्र और उनका पुरुषार्थसिद्धयुपाय — साधारण :	२-००
आचार्य अमृतचंद्र और उनका पुरुषार्थसिद्धयुपाय — सजिल्द :	३-००
धर्म के दशलक्षण — साधारण :	४-००
धर्म के दशलक्षण — सजिल्द :	५-००
क्रमबद्धपर्याय — साधारण :	२-५०
क्रमबद्धपर्याय — सजिल्द :	३-५०
क्रमबद्धपर्याय — प्लास्टिक कवर :	४-५०

Licence No.
P. P. 16-S.S.P. Jaipur City Dn.
Licensed to Post
Without Pre-Payment

If undelivered please return to :
प्रबन्ध-संपादक, आत्मधर्म
ए-४, टोडरमल स्मारक भवन, बापूनगर
जयपुर ३०२००४